THIRUKKURAL (Hindi)

T.E.S. Raghavan

Vasantha Book Trust

1986

85335
T 821.081 311 3
THI

International Literature Series

तिरुवल्लुवर की वाणी

THIRUKKURAL

यह पढकर नर-नार को नहिं हो दुख लवलेश ।
दिया गया है कुरल में नरजीवन-संदेश ।।

गीतकार
टी. ई. एंस. राघवन

CIIL LIBRARY
85335
CLASSICAL TAMIL LIBRARY, MYSORE

This book is published with the
financial assistance of the
Tirumala Tirupati Devasthanams
under their Scheme
"AID TO PUBLISH
RELIGIOUS BOOKS"

SYNOPSIS OF THE BOOK ENTITLED

SAINT THIRUVALLUVAR KI VANI (Hindi)

Saint Thiruvalluvar is the author of the ancient Tamil Classic known as THIRUKURAL. It consists of three parts containing in all 1330 verses.

The first part deals with righteous conduct (Arathupal) of Dharma, the second part deals with wealth (polity), Porutpal or Artha and the third with Love (Kamathupal) or Kama which are the three of the four Purusharthas that mankind should strive for in life.

The fourth Purushartha viz. Moksha is not separately dealt with by the author in the treatise. However, if a person should steadfastly adheres in life to the code of moral and ethics elaborately dealt within the first part he can surely expect (Moksha) of liberation from the cycle of birth and death. The second part extensively deals with the rights and duties of sovereigns, minister and citizens and also the ways and means to be accepted for ensuring economic prosperity of the people. The third part shows the ways and methods for obtaining the maximum good in conjugal life.

It may be stated that the author's ideas and ideals propagated in his work are quite in confirmity with the essential and fundamental moral ethical, philosophical truths and tenets enshrined in the ancient religious literature like the Upanishads, Ramayana, Mahabharata, Manu and other Smirthis, Kautilya's Artha Sastra, Vatsyana's Kama Sutras etc.

The topics dealt with in the Kural such as the classification of people in four castes, the four Ashramas, the law of Karma, rebirth, destiny or fate, free wills, heaven, hell etc. lend credence to the view that Thirukkural is a pleasing blend of all that is good in the various religions like Hinduism, Budhism, Jainism. etc. and the moral and ethical principles enunciated in Kural are intended for Universal application.

Madras,
1—12—1964

(T. E. S. RAGHAVAN)
Author

ACKNOWLEDGEMENT

I desire to acknowledge with profound gratitude for the assistance rendered by the undermentioned persons in bringing out this book and offer my thanks to them

Shri B. N. Viswanatha Reddy (Chandamama)

,, J. Harigopal

,, Gocooldas Jamnadas Charities

,, Mohanchand Dadha

,, Kola Perumal Chetty Garu

,, Krishnamachariar
(Lion's Club, Nungambakkam)

,, K. Ramu (Sunder Chemical)

,, T. K. Mani, Engineer T.N.E.B.

Lastly I am highly indebted to Sree T. Kailash Chand Chordia Correspondent, Sree R. Gyanchand Chordia, Secretary, and Sree Ram Kishore Tripaty Headmaster, S. M. B. Jain High School for having kindly granted me permission to bring out this publication and encouraged me in spreading the message of Tirukkural among the Hindi knowing public.

Madras
9—8—86

T. E. SRINIVASARAGHAVAN
Praveen Pracharak, Siromani,
Vidwan, Meemamsa Kesari,
Dhoha Samrat, Hindi Pandit,
S. M. B. Jain High School,
T. Nagar, Madras-17.

भूमिका

तिरुक्कुरल तमिल-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नीतिग्रंथ माना जाता है, जिसका रचनाकाल ई॰प्रथम शताब्दी में पड़ता है । प्रस्तुत काव्य के रचयिता सुप्रसिद संत तिरुवल्लुवरजी है ।

जाति न पूछे संत की पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करें तलवार का, पड़ा रहें तो ध्यान ।।

इस कथन के अनुसार हमें संत से जाति के बारे में चर्चा करना बेकार है तिरुक्कुरल के तीन भाग हैं - धर्म, अर्थ तथा काम । धर्मकांड में 38, अर्थ कांड में 70 तथा कामकांड में 25 अध्याय है । प्रत्येक अध्याय में 10 कुरल के हिसाब से संपूर्ण रचना में 1330 कुरल हैं । "तिरु" आदर सूचक विशेषण है जैसे हिन्दी में "श्री" कहते हैं । कुरलः तमिल के एक छन्द का नाम है, जैसे हिन्दी में दोहा है । तिरुक्कुरल में वर्णित विषय सार्वकालीन तथा सार्वदेशीय है ।

भारतीय जनता को सही रास्ते में ले जाने केलिए नीति ग्रंथों की नितान्त आवश्यकता है । नर-समाज में जो अशांति आज दिखाई पड़ती है उसका मूल कारण नीति - ग्रंथ का अनध्ययन ही है । इसलिए प्रस्तुत तिरुक्कुरल नीति-ग्रंथ मानव समाज केलिए शांतिदायक तथा सुखदायक सिद होगा । भव-सागर को पार करने केलिए ज्ञान की जरूरत होती है अत एव आदि शंकराचार्य ने कहा कि "ज्ञानात् मुक्ति" । प्रस्तुत "संत तिरुवल्लुवर की वाणी" ग्रंथ पढकर व्यक्ति ज्ञानवान और सुशील बन सकता है ।

जो शिक्षा कंठस्थ हो जाय तो चिरकाल तक वह शिक्षा अधिक उपयोगी सिद होगी । अत एव पद्य-शैली में यह ग्रंथ अनूदित है । अनुवाद करते समय मूल का भाव ज्यों का त्यों रहने की चेष्टा की गयी। राष्ट्र की राजभाषा हिन्दी में अनुवाद करने से ग्रंथ की उपयोगिता व्यापक होगी । विभिन्न शिक्षण - संस्था ओं के शिक्षाधिकारी प्रस्तुत ग्रंथ को पाठय पुस्तक के रूप में स्वीकार कर सकते है । पुस्तकालय तथा शिक्षण केन्द्रों में "संत तिरुवल्लुवर की वाणी" की प्रतियाँ अधिक मात्रा में खरीद कर हम जैसे हिन्दी सेवकों को प्रोत्साहित करने की कृपा करें ।

आशा है कि पाठक गण यह ग्रंथ पढकर लाभान्वित हो जाय तथा राष्ट्रीय एकता एवं भावात्मक एकता सुदृढ हो जाय ।

श्रुति-कुरान-बाइबिलमेंविद्यमान जो सार।
सो है प्रस्तुत कुरल में बुध का यही विचार ।।

मदास
2-2-1986

विनीत
टी·ई·एस·राघव

अनुक्रमणिका और कुरल की महिमा

1· देव स्तुति, बरसात औ, सन्यासी-गुण गान ।
किया गया है खूब ही, तथैव धर्म-बयान ।।

2· गृहस्थ, गृहिणी, सुत तथा, प्रेम, अतिथ सत्कार ।
मीठीबात, कृतज्ञता, तटस्थ का आचार ।।

3· संयम, शिष्टाचार, औ, परदाराननुराग ।
सह्य भाव, अनसूयता, उत्कठ ही अनुराग ।।

4· अपिशुनगुण, बकवाद के, निराकरण का वाद ।
पाप भीरुता और की, सहायता का वाद ।।

5· दानी का गुण-गान, यश, दयालु का आचार ।
आमिष-वर्जन, तप तथा, मिथ्या का आचार ।।

6· स्तेयरहितता, सत्य, औ अमन्यु, अवध्य भाव ।
हनन-रोध, चिरहीनता, सन्यासी का भाव ।।

7· तत्व ज्ञान, तृष्णामयी गुण का निरसन वाद ।
भाग्यवाद का जिक्र भी, धर्मकाण्ड मे ज्ञात ।।

8· नृप-गरिमा, शिक्षा तथा, अनध्ययन का भाव ।
श्रवण, बुद्धिसमवेतता, दोष-निवारण भाव ।।

9· सज्जन-संगति श्रेष्ठता, दुर्जन संगनिषेध ।
सुविचारित कृति निपुणता, अविमर्शन प्रतिषेध ।।

10· अपना बल का बोध, औ, सुसमय क उदबोध ।
स्थान-बोध, विश्वास दृढ, रखना करके शोध ।।

31· लखने में तो "कुरल" है धरता छोटा रूप ।
भावबोध में यह बड़ा, सिद्ध हुआ अनूप ।।

32· "देव ग्रंथ" के नाम से तिरुक्कुरल विख्यात ।
"आम निगम" के नाम से तिरुक्कुरल विख्यात ।।

33· "सत्य उक्ति" के नाम से तिरुक्कुरल मशहूर ।
पुराण-पुस्तक नाम से तिरुक्कुरल मशहूर ।।

34· देव सुधी, प्राचीनकवि, महामहिम विदान।
वल्लव केअभिधान ये आदिम कवि धीमान ।।

35· आदि पुत्र, भगवनतनय, वल्लव थे पटकार ।
उनकी पत्नी वासुकी, साध्वी रही उदार ।।

36· तिरुक्कुरल को बौद-कृति कहते हैं कुछ लोग ।
तिरुक्कुरल को जैन-कृति कहते हैं औ लोग ।।

37· शिवपूजक का कथन है सन्त शैव का ग्रंथ ।
हरिपूजक का कथन है यह वैष्णव का ग्रंथ ।।

38· जो भी हो हम बोलते नीति शास्त्र का ग्रंथ,।
तिरुक्कुरल को जगत में सब से उत्तम ग्रंथ ।।

39· राजनीतिविद केलिए, यह है परम सहाय।
सब नर इससे खूब हैं , करते प्राप्त सहाय ।।

40· मेरु मंथर पुराण औ तिरुक्कुरल की बात ।
दोनों ही हैं एक-सी "नायनार" का वाद ।।

41· क्या बालक, क्या नवयुवा, समाज का हर अंग ।
क्या ना जाने कुरल से, हित या अनहित रंग ।।

42· "कुरल" "कुरल" यों कूजते, मधुर शब्द समवेत ।
वल्लव-पिक को नमन हो, आगत कविता-खेत ।।

43· कविता-वन में विचरते वल्लवसिंहानिनाद ।
सुनकर हरेक आदमी, पाता है आह्लाद ।।

44· जो पीता है कुरलगत, विष्यसिन्धु की धार ।
उस वल्लव मुनि यदेवको, मम सलाम शत बार ।।

45· [illegible] बरसें समय पर, भूमि शस्य से युक्त ।
[illegible] रहित हो देश यह, जीव भीति से मुक्त ।।

46· [illegible] नीति से उद्गत हैं बहु भाव ।
मनु वल्लुव म [illegible] के भाव ।।

47· कालिदास के काव्य हैं उपमाओं से ख्यात ।
उपमा-पद-लालित्य से कुरल काव्य तो ख्यात ।।

48· सद्गुण अवगुण बन्धुता, विरह मिलन के भाव ।
तिरुक्कुरल में उल्लिखित, सभी रसों के भाव ।।

49· महासुधी वाल्मीकि से, वल्लुव भी विद्वान ।
महापुरुष शुकदेव से, वल्लुव भी धीमान ।।

50· कर्ण मधुर है कुरल कृति, इसमें नहि संदेह ।
वल्लुव की वाणी सदा, गूँज उठें हर गेह ।।

51· जीवन भर नर केलिए कुरल ग्रंथ पठनीय ।
कुरल-उक्ति हर बात में मानस में मननीय ।।

52· भाषण देने के लिए, कुरल-शास्त्र उपयुक्त ।
लेखन-परचा केलिए, कुरल वाक्य उपयुक्त ।।

53· विद्यार्थी-समुदाय को कुरल नीति सुख देय ।
अध्यापक समुदाय को कुरल तत्व आदेय ।।

54· विद्यालय में कुरल का ज्ञात मुख्य हो स्थान ।
ग्रंथालय में कुरल का सुविदित ऊँचा स्थान ।।

55· जीवन के हर क्षेत्र में, वल्लुव का अभिधान ।
दुनिया के साहित्य में, माना कुरल महान ।।

आदि भगवान की वंदना

1· सब अक्षर का आदि तो ही है यथा अकार।
सर्व जगत का आदि है भगवन उसी प्रकार।।

2· विद्या का अर्जन भला क्या आयेगा काम।
वरपद पर सत्यज्ञ के अगर न किया प्रणाम।।

3· चित्त-पद्म-गत ईश के चरण-पद्म जो पाय।
उन्नतिकर वर जगत में चिरजीवित रह जाय।।

4· प्यार-वैर से रहित के पादाश्रित जो लोग।
दर्द न दे उनको कभी जग-बाधा का रोग।।

5· जो रहते हैं ईश के सत्य-भजन में लीन।
पाप-पुण्यमय कर्म में वे रहते नहिं लीन।।

6· पंचेन्द्रिय-निरोध किये अज का किया विधान।
धर्म-मार्ग के पथिक जो हो चिर शतायुमान।।

7· उपमाविहीन ईश का नहीं पदाश्रय-युक्त।
तो अवश्य संभव नहीं होना चिन्ता-मुक्त।।

8· धर्म-उदधि करुणेश के शरणागत है धन्य।
उसे त्याग दुख सिंधु को तरता नहिं है अन्य।।

9· निष्क्रिय इन्द्रिय ही यथा "सिर" है सिर्फ हि नाम।
अष्टगुणी के पाद पर अगर न किया प्रणाम।।

10· ईश्वर-सेवी जगत में करते भव को पार।
ईश्वर-सेवक जो नहीं वे नहिं करते पार।।

11· उचित काल की वृष्टि से जग है जीवनदार।
समझी जाती है तभी वृष्टि सुधा की धार।।

12· उत्पादक है वृष्टि ही अन्नमयी आहार।
भक्षक जन को वृषिट खुद बनती है आहार।।

13· यदि पानी बरसें नहीं समुचित सम्यक् काल।
सिंधु -घिरे संसार में पड़ता भूख -अकाल।

14· वृष्टिमयी यदि आय की कमी कभी हो जाय।
तो किसान से खेत में हल न चलाया जाय।।

15· वृष्टि बली है बहुत ही अनावृष्टि क्षतिमूल।
बिगड़े जन को वृष्टि फिर बनती है सुखमूल।।

16· आसमान से मेघ की बूँदें गिर नहि जाय।
हरा भरा तृण भूमि पर ना तो ही उग जाय।।

17· यदि पानी नहि बरसता सागर पर बहु काल।
बड़ा सिंधु तो शुष्क बन हो जाता बेहाल।।

18· वृष्टि नहीं तो जगत में सुर-वन्दन हो मंद।
वृष्टि रहें तो जगत में सुर-पूजन सानन्द।।

19· इस महान संसार में दान तथा तप-कर्म।
वृष्टि नहीं तो ना रहें सदैव दोनों धर्म।।

20· बिनु पानी संसार का चलता नहिं व्यापार।
वृष्टि नहीं तो जगत में टिकता नहि आचार।।

यति की महिमा

21· श्रेष्ठग्रंथका लक्ष्य है जो हैं यतिवरशील।
फैलाना है जगत में उनका ही गुण-शील।।

22· यति-महिमा को जानना कभी नहीं है साध्य।
मृत-जन-गणना जगत में कब होती है साध्य।।

23· जन्म-मुक्ति के ज्ञान से जो धरता यति-रूप।
उसकी महिमा जगत में सबसे श्रेष्ठ अनूप।।

24· धिषणा रूपी अँकुश से इन्द्रिय नागारूढ।
मोक्ष भूमि का हेतु है इसमें नहीं निगूढ।।

25· इन्द्रिय-विजयी व्यक्ति का बल है अधिक महान।
सुरजगनायक इन्द्र ही इसका रहा प्रमाण।।

26· कठिन काम जो संतजन करते हैं दुस्साध्य।
वही काम करते नहीं अधम समझ दुस्साध्य।।

27· रूप गंध रस शब्द औ" स्पर्श मिलाकर पंच।
जानें इनके तत्व जो जानें वही प्रपंच।।

28· सार्थक भाषी संत की महिमा है विख्यात।
गूढ मंत्र उसके कहे जग में भी विख्यात।।

29· शील-शैल पर जो चढ़े वे हैं जगविख्यात।
उनका गुस्सा क्षणिक भी कारक है आघात।।

30· हिंसा तजकर जीव पर जो हैं करूणावान।
वे कहलाते है सदा भूसुर-जातीयान ।।

31· मुक्तिद तथैव अर्थ भी देनेवाला धर्म।
उससे बढ़कर जीव को क्षेयस्कर नहिं कर्म।।

32· श्रेयस्कर है जीव को करना अपना कर्म।
धर्म भूलना अहितकर, समझो तुम यह मर्म।।

33· भरसक करना चाहिये धर्म सहित ही कर्म।
चित्त-देह औ" वचन से अजस्र करें सुधर्म।।

34· पूत चित्त से जो रचा वही धर्म कहलाय।
चित्त-शुद्धि बिनु जो रचा वही दंभ कहलाय।।

35· ईर्ष्या, गुस्सा, कटुवचन और लोभ से हीन।
जो कुछ कृत है धर्म वह, बाकी धर्म-विहीन।।

36· मरण-काल में सोच मत धर्म-कर्म की बात।।
दैनिक कृत है धर्म ही आता अपने साथ ।

37· धर्म-कार्य के सफल का जरूरी नहि सबूत ।
शिबिका-रोही-धरी में इसका स्पष्ट सबूत ।।

38· बिना बितां येव्यर्थ दिन करना ही है धर्म ।
जनम मार्ग को रोकता शिला भूत वह धर्म ।।

39· धर्म कर्म से प्राप्त जो वह है सुख का मूल ।
और कर्म तो सुखद नहि नापि कीर्ति का मूल ।।

40· धर्म-कर्म ही मनूज को पग-पग पर करणीय ।
दुनिया में दुष्कर्म हैं कभी नहीं करनीय ।।

गृहस्थ - जीवन

आश्रमवासी तीन हैं लेते गृहस्थ -योग ।
गृहस्थ -जीवन सहज ही समझें हितकर योग ।।

निर्धन अनाथ और मृत रहते हैं असहाय ।
ऐसे जन का है गृही करता परम सहाय ।।

देव-पितर के प्रति सदा करना है कर्तव्य ।
अतिथि बंधु के प्रति हमें करना भी कर्तव्य ।।

वित्त कमाओ पाप बिनु खाओ बन्धु समेत ।
ऐसा जीवन है सदा माना पूर्ति समेत ।।

धर्म पंथ पर जो गृही यदि जाता निःशंक ।
तो गृहस्थ औ" धर्म भी सुफली हो निःशंक ।।

सहज धर्म से जो गृही करता है निज काम ।
साधक जनता में वही पाता पहला नाम ।।

गृहस्थ जीवन धन्य है जिनमें हो अनुराग ।
धर्मसहित जीवन सदा सुफली हो बेदाग ।।

मुनि जीवन से श्रेष्ठ है गृहस्थ -जीवन अेव ।
उसमें धर्माचरण है सुधर्मदर्शी अेव ।।
गृहस्थ जीवन असल में कहलाता है धर्म ।
वह जीवन ही श्रेष्ठ है जिसमें न निंद्य कर्म ।।

धर्म-मार्ग पर जो खडा वह है निष्ठावान ।
अैसा गृहस्थ देवसम बनें प्रतिष्ठावान ।।

जीवन-संगिनी का उत्कर्ष

51· गृहिणी-गुण को प्राप्तकर पति-मन के अनुसार ।
जो है जीवन-पालिका समझें उसे सुदार ।।

52· गृहिनी में यदि गुण नहीं, गृह्य-कर्म के अर्थ ।
तो जीवन संपन्न भी माना जाता व्यर्थ ।।

53· पत्नी हो यदि गुणवती है नहिं कभी अभाव ।
यदि पत्नी गुणरहित तो किसका नहीं अभाव?

54· स्त्री से बढ़कर चीज़ औं नित है महत्वहीन ।
स्त्री के पातिव्रत्य में दृढ़ता हो मलहीन ।।

55· और देव पूजे बिना पतिपूजन मे लीन ।
साध्वी के आदेश से होगी वृष्टि हसीन।।

56· सती भाव की पालिका पतिपेषण मे लीन ।
जो है गृह-यश-कारिका स्त्री वह दृढ़तालीन ।।

57· बन्दी-निकेत है नहीं स्त्री का पहरेदार ।
सती भाव है रात-दिन स्त्री का पहरेदार ।।

58· पति-पूजन में नारियां यदि रत हो सविशेष ।।
तो उनका सम्मान भी हो दिव में सविशेष ।।

59· स्त्री नहि गृह-यश-कारेका तो नहि होता मान।
हैरिपुगण के सामने शेर-चाल असमान।।

60· घर का शुभ -मंगल कहें पत्नी की गुण-खान ।
पत्नी का भूषण कहें पाना सत्संतान ।।

पुत्र लाभ

· विभवों में सबसे बडा, बुद्धिमान संतान ।
पाकर उसको हम नहीं, मानें और महान।।

· सात जन्म तक भी उसे स्पर्शी न करता ताप ।
यदि जिसको वर सुत मिलें गुणशाली निष्पाप ।।

पुत्र सदृश निज वस्तु नहिं यही बडों की उक्ति ।
पुत्र-अर्थ की प्राप्ति तो निज कर्मो की शक्ति ।।

निज नन्हे सुत हाथ से पक्व विलोडा भात ।
देवामृत से स्वादकर होता मीठा भात।।

· निज-सुत-तन के स्पर्श से तन को है आनंद ।
शिशु की तुतली बात से कानों को आनंद ।।

· जिस जन ने जब नहिं सुनी शिशु की तुतली बात ।
तब उस जन को मधुर है मुरली-बीन-निनाद ।।

[illegible] रे उपकार यह जिससे निज औलाद ।
करें सभा में डर बिना पहले वाद-विवाद।।

३· यदि शिक्षित संतान हो तो निज को हो हर्ष ।
उससे बढ़ संसार को वहदेगा बहु हर्ष ।।

१· पुत्र-जनन के बाद माँ पाती ही है हर्ष ।
सत्सुत के यश-लाभ से माँ है और सहर्ष ।।

०. पुत्र जनक का यह करे पहले में उपकार ।
"धन्य धन्य इसके जनक" यही कहें संसार।।

71· अर्गल में बन्दी नहीं अनुरागी का राग ।
नयन अश्रु है प्रकटता प्रेमी का अनुराग ।।

72·स्नेहरहित जन चाहता निज हित सब कुछ माल।
स्नेही औरों के लिये देगा हड्डी-जाल।।

73·जैसा शरीर प्राण का घनिष्ठ ही संयोग ।
जीवन सफल है जिसमें हो रति-योग ।।

74·पैदा कर लें प्रेम ही मिलनसार का भाव ।
वही प्रेम पैदा करें मैत्री का भी भाव ।।

75·सुखजीवी हैं भोगते जग में सुख-पर।
नेह निभाना जगत में जीवन का परिणाम ।।

76·अज्ञ कहें अनुराग है धर्म-सहायक मात्र।
विज्ञ कहें रति पाप से रक्षक है डंक मात्र।।

77·मरुथल पर तरुवर कभी नहि है पल्लवयुक्त ।
गृहस्थ जीवन धन्य नहि स्नेहहीन-मनयुक्त ।।

78·स्नेह-देह में अगर नहि बन अन्तर का अंग ।
तो क्या फल? यद्यपि रहें बाहर के सब अंग ।।

79·ज्यों पीडित हैं घर्म से कीडे अस्थि विहीन।
त्यों पीडित हैं धर्म से प्राणी स्नेहहीन ।।

80·प्रेमसहित जो देह है वह है देह सजीव ।
अस्थिचर्मयुत देह में नेह न तो विहीन।।

अतिथि -सम्मान

81 · गृहस्थ -जीवन है तभी माना जाता धन्य ।
जब ही आदर अतिथि का किया जाता अनन्य ।।

82 · घर के बाहर अतिथि, रख अन्दर खुद यजमान।
पिवें अमृत भी कर्म वह चाहिये न असमान ।।

83 · जो करता है अतिथि का प्रतिदिन ही उपचार ।
वह अभाव का तो कभी बनता नहीं शिकार ।।

84 · हँसमुख जो हो अतिथि का करता है उपचार
उसके घर में है रमा करती सदा विहार ।।

85 · अतिथि -भोज के बाद जो खाता बाकी आप ।
फसलें उसके खेत में उगती अपने आप ।।

86 · आगत-भावी अतिथि का जो करता सत्कार ।
वह देवों का अतिथि बन, पायेगा सत्कार ।।

87 · याग-लाभ सम अतिथि का अपरिमेय सत्कार ।
अतिथि -पात्र के अनुरूप मिलता फल-सत्कार ।।

88 · अतिथि -यज्ञ में जो नहीं लेता समुचित भाग ।
खोकर संचित वित्त वह खुद कहता "गतराग" ।

89 · निर्धनता ऐश्वर्य आतिथ्यविहीन कर्म ।
अविवेकी में दीखता निन्दनीय दुष्कर्म ।।

90 · सूंघा "अनिच्च" कुसुम को जो वह कुँहला जाय ।
नेह-रहित दृग दृष्टि से अतिथि -वदन कुँहलाय।।

91· धर्म-तत्व-विद कपट बिनु कहते मीठी बात ।
उनकी बोली में सदा प्रेम भाव है साथ ।।

92· दिल खुश होकर और को देने से भी दान ।
हँसमुख होकर मधुर वच कहना उत्तम, जान ।।

93· सौम्य भाव के साथ ही हार्दिक मधुर समेत।
वच जो प्रयुक्त है सदा वही धर्मसमवेत ।।

94· जो कहता है और से प्रिय सुखकर मधु बात ।
दु खकर अभावनहि उसे ग्रसता है दिनरात ।।

95· नरभूषण है मधुरवच तथैव विनमगभाव।।
बाकी भृषण मनुज के रखें न सार्थक भाव ।।

96· मधु वच के उपयोग से होता अधर्म-लोप ।
और धर्म की वृद्धि भी होती है निष्कोप ।।

97· परहितकारी मधुर वच जो कहता दिन रात ।
हित-सुख -नय औ पुण्य भी उसे मिले दिन-रात

98· परदुखनाशक मधुर वच ओछापन से हीन ।
सुखकर है सर्वत्र ही इह पर-जन्मविहीन ।।

99· मधु वच के उपयोग से नर पाता सुख भोग।
क्यों फिर कठोर वचन का होता है उपयोग।।

100· तजकर मीठे वचन को कटु वच का उपयोग ।
यथा पका फल छोड़कर कच्चे का उपभोग ।।

कृतज्ञता

101· खुद पर का उपकार बिनु पर से कृत उपकार ।
भू-सुर-जग के दान से उत्तम है अविकार ।।

102· उचित समय पर जो रचा सहाय अल्पाकार ।
वह सहाय संसार से होगा बृहदाकार ।।

103· स्वार्थहीन कृत मदद की तुलना नहि हो चाय।
सागर से उस मदद को बड़ा कहाया जाय ।।

104·तिल भर कृत उपकार को ताड़-पेड़ सम संत ।
बृहत रूप में मानते हैं जीवन पर्यन्त।।

105·परकृत का उपकार का और नहीं परिमाण ।
उपकृत की ही योग्यता उसका है परिमाण ।।

106·निर्दोषी की बंधुता कभी न छोड़ी जाय ।
दुख में उपकृत मनुज का प्यार न छोड़ा जाय ।।

107·निज दुख हर नर मित्रता सात जन्म पर्यन्त ।
सुमिरण करते अन्य से उपकृत महान संत ।।

108·ठीक नहीं है भूलना पर से कृत उपकार ।
अच्छा तत्क्षण भूलना पर से कृत अपकार ।।

109·कृतल सदृश कोई करें अगर बड़ा नुकसान ।
तो भी उसकी मदद सुध हरती है नुकसान।।

110·धर्मविनाशी मनुज भी पाता है उद्धार ।
कृतघ्न का संसार में साध्य नहीं उद्धार।।

111 · पक्षपात बिनु जो रचा वह है न्यायामेत।
निष्पक्ष भाव हर कहीं उत्तम धर्मसमेत ।।

112 · धन-दौलत निष्पक्ष की नहि हो विनाशवान।
भावी संतति के लिये करती हितप्रदान ।।

113 · तजने से मध्यस्थता जो मिलता धनमाल ।
भला भले ही वह करें तजें उसे तत्काल ।।

114 · कोई नर निष्पक्ष है अथवा बेईमान ।
अपनी कृति के शेष से होती है पहचान ।।

115 · वित्तनाश धन वृद्धि की स्वाभाविक है बात ।
मध्यस्थता जीवन में सज्जन-भूषण-बात ।।

116 · जो तजता निष्पक्षता सोचे भ्रष्टाचार ।
उसकी क्षति की सूचना देते हैं कृविचार।।

117 · जगह नहीं ही मानता निष्पक्ष का अभाव ।
अहितकरी है ही नहीं नापि तथा लघुभाव ।।

118 · वस्तु तोलने ज्यों तुला त्यों हैं महानुभव ।
अपनाते ही नहि सदा किसी पक्ष का भाव ।।

119 · वचन नहीं नित बदलना निष्पक्ष का निशान ।
मन-ऋजुता भी चाहिये मध्यस्थ का निशान ।।

120 · और माल को वणिक यदि समझें अपना माल ।
और करें व्यापार तो होगा न गोल-माल ।।

संयमशीलता

121· स्वर्ग-सदृश सुख मनुज को देता संयम भाव ।
नरक-सदृश दुख मूल है संयमविहीन भाव ।।

122· संयम का पालन करो उत्तम वस्तु-समान ।
वही जीव को श्रेयकर सबसे अधिक महान ।।

123. संयम गुण को ग्रहण कर जो हो सत्पथशील।
उसे बनाता श्रेष्ठ ही संयमरूपी शील ।।

124· स्थिर होकर निज धर्म में जो हों संयमयुक्त ।
उसका महत्व शैल से होगा उन्नतियुक्त ।।

125· सारी जनता के लिये उत्तम विनम्र भाव ।
धनी के लिये खास धन मानो विनम्र भाव ।।

126· कछुआसम जितेन्द्रिय हो, जो जीवनपर्यन्त।
उसका पालक दमनगुण सात जन्म पर्यन्त।।

127· वशीभूत हो जीभ ही औ, नहि हो परवाह
अवशी जिह्वा हेतु है शब्द दोष दुखदाह ।।

128· प्रयुक्त इक अपशब्द से होता है नुकसान।
सब सुकर्म के सुफल का उससे हो अवसान ।।

129· अगिन-आंच का घाव हो नहि मानस की चोट ।
कटुक वचन से ठीक नहि होती दिल की चोट ।।

130· शिक्षित विनयी जो सदा नहि होता नाराज़ ।
उसका स्वागत धूम से करता सुधर्मराज ।।

131 · सदाचार अभिवृद्धि का दायक समझा जाय ।
सदाचार ही प्राण से रक्षणीय समझाय ।।

132 · सदाचार को पालना सहकर भी खुद खेद ।
वही सहायक जीव का इसमे नहिं मत-भेद ।।

133 · सदाचार करना सदा कुलीनता का चिह्न ।
दुराचार करना सदा नीच वंश का चिह्न ।।

134 · भूल गया तो वेद भी फिर सभव अभ्यास ।
आचारहीन मनुज के कुल का होगा नास ।।

135 · असूयालु के वित्त की होती नही समृद्धि ।
आचारहीन मनुज की होती नहि अभिवृद्धि ।।

136 · "आचार नहीं तो भूल हो" यह विचारकर धीर ।
सदाचार करके सदा बनते सुकर्मवीर ।।

137 · उन्नति देता है हमे सदाचार इकमात्र ।
अवनति ला देता हमे दुराचार इकमात्र ।।

138 · मुख से दुर्वच भूलकर न कहें चरित्रवान ।
दुर्वच कहना दोषयुत समझे चरित्रवान ।।

139 · लोकाचार विहीन जो भी हो शिक्षावान ।
फिर भी वे बनते नहीं सदैव विवेकवान ।।

140 · सदाचार है सुखमयी जीवन का इकबीज ।
दुराचार है दुखमयी जीवन का इकबीज ।।

पर-पत्नी पर विरति

141· पर-पत्नी पर कामना मौर्य कर्म समझाय ।
धर्म अर्थ के विज्ञ में वह रति नहि ठहराय ।।

142· परपत्नीरत मनुज जो खोज रहें पर दवार ।
मूढ वही है और नहि, यह कहता संसार ।।

143· विश्वासी की दार से जो रखता संसर्ग ।
जीवित भी वह मृतक सम है नहि पाता स्वर्ग ।।

144· जो करता पर-दार पर अनुचित ही व्यवहार ।
उसको क्या है फायदा यदपि रहें बहु यार ।।

145· सुलभ काम ही समझकर जो पर-दारालीन ।
पाता है कलंक वही सदैव अमिट मलीन ।।

146· वैर पाप भय निंदता ये मिलकर कुल चार ।
उसे छोडते ही नहीं जो करता व्यभिचार ।।

147· उसका जीवन धर्म से सदैव विराजमान ।
जो रहता पर-दार पर निस्पृह विरक्तमान ।।

148· औ-स्त्री को नहि चाहना पौरूष समझा जाय ।
यही आचरणसंत का उत्तम समझा जाय ।।

149· सागरवेष्टित भूमि पर कौन भोग्य का पात्र ।
जो फर्शित करता नहीं पर-पत्नी का गात्र ।।

150· चाहे कर ले पाप भी धर्म-मार्ग-रीति हीन ।
पर-दारा पर विरति ही नहि है श्रेयविहीन ।।

151· यथा खनक को भू मि ही, सहनशील बन जाय ।
माफ़ी करना निन्द्य को, उत्तम कहा सुभाय।।

152· पर से कृत अपकार सब, सहना हित समझाय ।
उससे बढ़कर भूलना, सर्वोपरि समझाय ।।

153· अभाव में अभाव वही, जिसमें आतिथ्य नापि ।
बल में बलहै सहयता अनहित अज्ञकृतापि ।।

154· यदि तुमसे संपूर्णता, अलग न हो ही जाय ।
सहन भाव को लगन से, अपनाया तो जाय ।।

155· प्रतिकारक को लोग तो, मानें नित नाचीज़ ।
सहनशील को लोग ही, मानें सुवर्ण चीज़ ।।

156· प्रतिकारी को इक दिवस, मिलता हो आनंद ।
सहनशील को प्रलय तक, मिलती कीर्ति अनंत ।।

157· निज को पर से क्षति हुई, तो मत करो अनिष्ट ।
सहनशील ही जगत में, माना है धर्मिष्ट ।।

158· तेरे खिलाफ़ दर्प से, जो करता बरताव ।
उसे जीतना सहन से, उत्तम अनुपम भाव ।।

159· यति से जग में श्रेष्ठ है, अैसे गृहस्थ पूत ।
जो सहते हैं नीच के, कटुक वचन विष भू त।।

160· निराहार होकर करे, जो जप तपस महान ।
उससे बड़े सहिष्णु का, माना जाता स्थान ।।

असूयाहीनता

161· ईर्ष्या मन से दूर कर, जो जीवित है रोज़।
उसका जीवन शीलयुत, माना है तू सोच ।।

162·जीवन तब संपन्न है, जब नर ईर्ष्याहीन ।
अनसूया का भावयुत, नर माना नहि दीन ।।

163· नहीं चाहता व्यक्ति जो, धर्म तथा ही अर्थ ।
पर-वैभव से तुष्टि किंतु, वह पाता नहि अर्थ ।।

164·ईर्ष्या करने से सदा, होगा हानि-अनिष्ट ।
यों अवगत सज्जन जी, करते नहि धीमंष्ठ ।।

165·भूत करें यदि शत्रु भी, करने कभी अनिष्ट ।
फिर भी ईर्ष्या ईष्य को, देगी सदा अनिष्ट ।।

166·दानी-कृति को देखकर, जो जलता है आप ।
हो उसके परिवार में, प्यास-भूख का ताप ।।

167·असूयालु को इन्दिरा, अपनी ज्येष्ठाधीन ।
बना रही है रात दिन, खुद होकर स्वाधीन ।।

168·ईर्ष्या रूपी पापिनी, हर लेती है वित्त ।
ले जाने भी नरक तक बनती वहीनिमित्त ।।

169·है वैभव ईर्ष्यालू का, विधि-कृति का ही कार्य ।
अभाव ईर्ष्याहीन का, पूर्वजन्म का कार्य ।।

170·धन वैभव उनका नहीं, जो हो जलन-समेत ।
धन की इति उनकी नहीं, जो हो ईर्ष्यापित ।।

171 · जो है पर से वित्तहर, चलकर अनुचित राह ।
उसका कुल निर्मूल हो, होगा और गुनाह ।।

172 ·नीति-मार्ग के त्याग से जिसको होती भीति ।
वे पर धन गत लाभ से करते कृति न अनीति ।।

173 · जो चिर सुख हैं चाहते, वे नश्वर सुख भोग ।
कभी नहीं है चाहते, नापि करें अघ-भोग ।।

174· इन्द्रिय विजयी जो तथा, ज्ञानी निर्मल चित्त ।
दीन दशा में भी नहीं, वे लेते पर-वित्त ।।

175 ·गहरे विस्तृत ज्ञान से होगा क्या उपकार ।
लालचवश सब से करें अगर बुरा आचार ।।

176 · प्रसाद हरि का चाहता जो भी हो धीमंष्ट ।
सो सोचें यदि अहित तो पाता वही अनिष्ट ।।

177 · मत चाहो सो धन कभी, जो लालच से प्राप्त ।
उस धन से सुखचैन भी कभी नहीं संप्राप्त ।।

178 ·उसके धन का क्षय नहीं, जिसका सदैव चिंता।।
चाहता नहीं जगत में और जनों का वित्त ।।

179 ·जो परधन नहि चाहते, धर्मी औ" मतिमान ।
श्री जाती उनके यहाँ उचित पात्रता जान ।।

180 ·और-वित्त की कामना करना है क्षय देय ।
लोभ रहित धन से सदा होगी जय चिर गेय ।।

181 · धर्म नाम लेते बिना करने से अघ काम ।
विशुन-नाम पाना नहीं यह है अच्छा काम ।।

182 · धर्म नष्ट कर पाप की कृति करने से हेय ।
मुँह में स्तुति है बगल में निन्दा ही अवधेय ।।

183 · मरण भला है जगत में संमुख में तारीफ़ ।
औ" दूषण से बगल में, चाहे नहि तकलीफ़ ।।

184 · कोई बोलें सामने यद्यपि वचन कठोर ।
पीछे कभी न चाहिये कहना वचन कठोर ।।

185 · पिशुन जीभ से धर्मकी यदि करता तारीफ़
तो भी उसका चित्त है कलुषित सदा अजीब ।।

186 · जो यदि करता और पर निन्दनीय आरोप ।
वह औरों से निंद्य हो तथा बने सारोप ।।

187 · जो करता नहिं मित्रता मधु वच से अनमोल ।
अलग कराता बंधु को वह पीछे कुटु बोल ।।

188 · जो करता है मित्र पर कठोर दोषारोप ।
वह न रहेगा और पर बिना किये आरोप ।।

189 · सहनशीलता धर्म है - ऐसा सोच विचार ।
करके ढोती भूमि नित पिशुन मनुज का भार ।।

190 · पर दूषण की खोज सम यदि ढूँढे निज दोष ।
तो अैसे चिरजीव को दुख नहि, हो संतोष ।।

191·अनेक जन से धृणित जो करता वार्तालाप ।
वह बनता सब मजुन का ह्रास्य पात्र है आप ।।

192·बातें निष्फल बोलना बहुत जनों के बीच ।
है मित्राहित-कार्य से समझा जाता नीच ।।

193·जिसकी बातें व्यर्थ हैं तथैव विशदाकार ।
वही नीति से रहित है भाषणसूचक सार ।।

194·विफ्ल वचन कटु बोलना बहुत जनों के बीच ।
हित से विहीन और हो अधर्म से युत नीच ।।

195·यदि सुशील कोई करें निष्फ्ल वचन प्रयोग ।
उससे होते अलग ही गौरव औ" यश योग ।।

196·प्रयोग निष्फ्ल शब्द का करता है जो व्यक्ति ।
कहलाता है नहि मनुज, भूसा समझो व्यक्ति ।।

197·भले कहें ही जन बड़े कहीं नीति बिनु शब्द ।
किन्तु इसी में निहित हित, कहें न असफल शब्द ।

198·महाप्रयोजन खोजकर कृति करते सविवेक ।
वे अतिशुभ फ्ल हीन वच नहि कहते भी अेक ।

199·जो नर विवेक सहित हैं तथैव कलंकहीन ।
कहते भी वे भूलकर वचन नहीं फ्लहीन ।।

200·कहना है तो बोलिये सफ्ल अर्थ के शब्द ।
कभी न अैसा बोलियेंजिसमें हो अपशब्द ।।

बुरे कार्य से भय

201 · कुकर्म रूपी मोह से पापी नहिं भयभीत ।
सुकर्मकारी लोग तो अघ से हैं भयभीत ।।

202 · माना जाता है सदा पाप-कार्य दुख-देय ।
आग-सुदृश वह भीम है तजें उसे भय-देय ।।

203 · विवेकयुत कृति जाल में सर्वोपरि आचार ।
अपने हिंसक शत्रु पर कभी न करता वार ।।

204 · यदि कोई भी भूलकर सोचें औ" की हानि ।
सोचेगा तो धर्म भी सदैव उसकी हानि ।।

205 · "मैं हूँ दारिद" समझकर कोई करें न पाप ।
यदि कर लें यह औ" बनें दारिदतर भी आप ।।

206 · कोई चाहें पाप से पीडित अगर न आप ।
तो नहिं करना चाहिये अन्यों के प्रति पाप ।।

207. महान रिपु से आप ही बच सकता है व्यक्ति ।
दुरित कर्म के वैर से पर बचता ना व्यक्ति ।।

208 · जो करता है दुष्कर्म सो पाता अवसान ।
छाँह मनुज को छोडकर जाती नहि है आन ।।

209 · यदि काई भी चाहता अपने का परिपाल ।
तो यह रखें न चित्त में पाप-कार्य का ख्याल ।।

210 · अविनाशी समझो उसे जो न करें अधकाम ।
और पाप की तरफ़ वह लखे नही अविराम ।।

211 · फरज निभाता मेघ सम उपकारी है सन्त ।
प्रत्युपकार न चाहता जग से कभी अनन्त ।।

212 · श्रम से अर्जित वित्त जो आता पर का काम ।
सिद्ध यही है जगत में योग्य मनुज का दाम ।।

213 · सुरजग औ" नरलोक में परोपकार समान ।
और काम नहि हितकरी जानें यह इनसान ।।

214 · जगगति वेत्ता मनुज को समझो सदा सजीव ।
जगगति विहीन मनुज को तुम जानो निर्जीव ।।

215 · ज्यों पानीयुत झील का होता जनोपयोग ।
त्यों जगगति-गामी-विभव होता परोपयोग ।।

216 · ग्राम मध्य ज्यों सुफल तरू समझे सार्वजनीन ।
त्यों हितकारी मनुज को धन हो सार्वजनीन ।।

217 · ज्यों तरू का हर अंग है करता औषध काम ।
त्यों उदार नर का विभव आता पर का काम ।।

218 · अभाव में भी नर सुधी करके ही करणीय ।
हैं पर के उपकार में बनते परिगण नीय ।

219 · उपकारी की रिक्तता यह बतलायी जाय ।
अभाव में अफ़सोस भी करना हो असहाय ।

220 · यद्यपि परोपकार से अपनी होगी हानि ।
तो भी निज को बेचकर मोल-योग्य वह हानि ।।

दान

221 · निर्धन को जो देय है वह है सचमुच दान ।
बाकी सब हैं दान जो प्रतिप्रयोजनवान ।।

222 · उचित मार्ग ही क्यों न हो, लेना दान न क्षेय।
यदपि मुक्ति ना तो मिले प्रदान फिर भी क्षेय।।

223 · निज को निर्धन ना कथन, देना पर को दान ।
दोनों ही कुलजात में विद्यमान नहि आन ।।

224 · याचक की अभियाचना जब तक नहि है प्राप्त ।
तब तक याचक का लपन प्रसन्नता नहि प्राप्त ।।

225 · भूख -दमन की योग्यता रखते हैं मुनि लोग ।
भूख मिटाने योग्यता रखते हैं दानी लोग ।।

226 · धनिक कोषवह है सही जिससे धनयुत लोग ।
निरसन जरूर ही करे दारिद का क्षुध शोक ।।

227 · पर को देकर जो स्वयम् खाता है आहार ।
भूख-रोग का वह कभी बनता नहीं शिकार ।।

228 · धन-संचय कर और को अनुपयुक्त खो जाय ।
अैसे अमीर दान का हर्ष न समझा जाय ।।

229 दुखमय है वह भीख से जो नहि परोपयुक्त ।
तथैव अपने आप को हो जाता उपयुक्त ।।

230 · दुखमय है तो मरण ही फिर भी तो अवधेय ।
निर्धन को देना नहीं, सब से है दुख -देय ।

231 · दीन मदद कर जिन्दगी चलना यश का मूल ।
ऐसा जीवन जीव को सब से है अनुकूल ।।

232 · उसका ही गुणगान हैं करते शंसक लोग ।
जो याचक को दान में देता है निश्शोक ।।

233 · अनुपम यश संसार में होता नहीं विनाश ।
और सभी हैं जगत में पाते सत्यानाश ।।

234 · इस जग में स्थिर यशकरी जो करता है काम ।
अभिनन्दन करता स्वरग लेके उसका नाम ।।

235 · अभाव में यश-वृद्धि औ विनाश में अविनाश ।
ज्ञानी बिनु ये और में संभव नहि शाबाश ।।

236 · लेना सुजन्म चाहिये जिससे यश ह्वे जाय ।
यश बिनु लेना नहि जनम, समुचित समझा जाय ।।

237 · जो नर नामी है नही, वह निन्दक नहि आप ।
निज निन्दक को देखकर होता उसको ताप !!

238 · यदि नहि मिलती मनुज को वंशगता ही कीर्ति ।
तो मिलती संसार में उसे सिरफ़ अपकीर्ति ।।

239 · जब ढोती है भूमि तो यशहीनों का भार ।
तब भू की भी ह्रास है होती पैदावार

240 · निर्मल यशयुत जो जिये समझे वही सजीव ।
कीरति विहीन जो जियें समझे सो निरजीव ।।

241·निखिल धनों में उच्च है करुणा रूपी वित्त ।
तुच्छ जनों के पास भी वस्तुमयी है वित्त ।।

242·सत्पथगामी खोजकर जीवे करुणावान ।
कई रीतियों से दया ठहरी आश्रयवान ।।

243·तममय दुखमय जगत को नहि जाता सो व्यक्ति ।
दयाभाव पर जो नफ़र रखता है आसक्ति ।।

244·पर जीवों पर जो दया करता रक्ष समेत ।
उसे न लगते अघकर्म असुहर भीति समेत ।।

245·उनको नहि है वेदना जो हो करुणावान।
[illegible] उपजयुत विभु भू निदर्शवान ।।

246·दयाहीन जो पाप के करते कार्यकलाप ।
धर्मकर्म वे छोडकर भूलें अपना ताप ।।

247·दयाहीन को प्राप्त नहिं आमुष्मिक सुख भोग ।
मालहीन को प्राप्त नहि ऐहिक सुख का भोग ।।

248·मालहीन फिर समय पर बनता मालामाल ।
दयाहीन नित हो क्षयी यह है बुध का ख्याल ।।

249·ज्यों है अनुचित मूढ का पोषी-तत्व-विचार ।
त्यों अनुचित है उग्र से विरचित पुण्याचार ।। (उग्र : निर्दय)

250 जब दुर्बल पर उग्र है करता अत्याचार ।
सोचें खुद को उग्र तब सबल मध्य लाचार ।।

251. निजी देह को पालने जो खाता औ" मांस ।
कैसा बनता वह सदय? अशन करे मत मांस ।।

252. धनगत सुख उसको नहीं जो नहि है धन पाल ।
दयाभोग उसको नहीं जो खाता झषजाल ।।

253. ज्यों सशस्त्रका दिल कभी बने न कृपा समेत ।
त्यों आमिष भुक् का हृदय नहि करुणासमवेत ।।

254. हिंसा तजना है दया वध करना है पाप ।
इसी लिये भी मांस का सेवन करना पाप ।।

255. आमिष खाना छोडना समझा जाता धर्म ।
आमिष सेवी नरक से बचता नहि, यह मर्म ।।

256. मांसाहारी जगत में यदि नहि होते लोग ।
तो कैसे रहते कहाँ? हिंस कसाई लोग ।।

257. आमिष प्राणीघाव है ऐसा समझा जाय ।
आमिष का अनशन सदा अपनाया ही जाय ।।

258. प्राणी वध से लब्धजो मृततन सो है मांस ।
दोषहीन मतिमान तो खाते नहि हैं मांस ।।

259. हवन आग में डालकर करना क्या शत याग ।
उत्तम समझें ना करे मांस-भोज पर राग ।।

260. प्राणीघातक जो नहीं औ" तज मांसाहार ।
उसको करते जीव सब सांजलि वन्दनवार ।।

261· सहना स्वापन्न दुख को, जीवाहिंसा भाव।
ये दोनों हैं जगत में तप के सही स्वाभाव॥

262·तपोसिद्ध उनको मिले जो जापक बहु जन्म ।
तपोसिद्ध उनको नहीं तपी न जो बहु जन्म ।

263·यतिजन के उपचार में गृहस्थ हो तल्लीन ।
शायद हो जाते सदा तापस कर्म-विहीन ।।

264·प्रियजन का उत्थान औ" रिपू जन का अवसान ।
सुमिरण से ही साध्य है तप तो सुशक्तिमान ।।

265·जो कुछ इच्छित हृदय में सो सब तप से लभ्य ।
इसी लिये इस लोक में करना है तप तप्य ।।

266·जो नर करता है तपस सो होता कृतकृत्य ।
कामी बनकर औ" सभी करते हैं दुष्कृत्य ।।

267·जैसा सोना आग में तपकर शोभावान ।
वैसा करने से तपस विवेक विवद्धर्मान ।।

268·जिसके मन में है नहीं अहंकार का भाव ।
उसके प्रति है जीव सब रखते सेवा-भाव ।।

269·तपस -सिद्धि जिसको मिली वह हो अतिबलवान ।
बचा सकें तो काल से सदैव अपनी जान ।।

270·तप करके संसार में धनी हुये कुछ लोग ।
तप ना करके जगत में रिक्त हुये बहु लाग

मिथ्याचरण

271· कपटी का आचरण है तथ्यहीन आचार ।
यह लखकर मन में हसें पंचभूत तनु धार ।।

272·वेषा-भूषा तापसी धरकर है क्या लाभ ।
जान-बूझकर जबकि भी मानस कर ले पाप ।।

273·मनोबली जो है नही उसे वृथा मुनि वेष ।
ज्यों चरती है गाय, धर बाघ-खाल का वेष ।।

274· तपो वेष में लीन रह जो करता दुष्कर्म।
जूयों किरात अगोचर बिन करता शिकार-कर्म।।

275· मिथूयाचारी बोलता "निज कोबहुत विरक्त "
उसका मिथूयाचार से सिर्फ शोक हो दत्त।।

276· वही क्रूर है जो सदा करता है छल-जाल।
और तपीसम वेष से मन से खल विकराल।।

277· ऐसे नर हैं जगत में जो गुंजा की भाँति।
बाहर से तो साफ है अन्दर में तम भाँति।।

278· ऐसे नर ही हैं कई जो रखते तन साफ।
पर मानस में कालिमा रखते बेइन्साफ।।

279· कठोर सीधा बाण है टेटी वीणा रम्य।
भले बुरे की जाँच हो नर कृति फल से गम्य।।

280· जग से दूषित काम यदि अपनाया नहि जाय।
केश-मुंडन तो औ वृथा जटा धरण निरुपाय।।

281· स्तेय बुद्धि जिसकी नही, जग में वही सदैव।
पर-दूषण से मुक्त है, बाकी दूषित अेव।।

282·गलत सोचना चित्त में अहित करी ठहराय ।
अन्य वस्तु का ना हरण छल से हित ठहराय ।।

283·स्तेय लब्ध धन वृद्धिसम बढ़कर दिखे असीम ।
क्षति पाता है बाद में वह धन औ" निस्सीम ।।

284·स्तेय वृत्तिकी कामना जो होती निस्सीम ।
कार्य काल में हो वही दुखदायक निस्सीम ।।

285·असावधानी अन्य की लखकर स्तेय विचार ।
जो रखता है हृदय में उसमें रहम न प्यार ।।

286·चोरी करने में अधिक तत्पर हैं जो लोग ।
मर्यादा का दायरी न जानते वे लोग ।।

287· मर्यादामय जीविका अपनाते जो लोग ।
उनमें चोरी-अज्ञता नहि करते बुध लोग ।।

288·मर्यादित के हृदय में ज्यों बढता है धर्म ।
त्यों मानस में चोर के बढता है छल-कर्म ।।

289·स्तेय वृत्ति बिनु औ करम जो न जानते रोज ।
वे करके निज बहु अहित करते क्षति की खोज ।।

290·स्तेय वृत्तियुत मनुज को नहि मिलता सुख भोग ।
स्तेयहीन ही मनुज को मिलता इह-पर भोग ।।

291· सत्य वचन संसार में वही कहाया जाय ।
जिससे जरा न अन्य को होता अहितापाय ।।

292·असत्य भाषण अगर हो दोषहीन-हित-देय ।
तो वह असत्य कथन भी सत्य सदृश आदेय ।।

293·सत्य जानकर हृदय में न करें मिथ्यावाद।
मिथ्या भाषण आप को देगा ही अवसाद ।।

294·जान बुझकर हृदय से जो न कहे असत्य ।
जनता हृदय में वास तो करता है वह मर्त्य ।।

295·तपस दान संसार में रचते हैं जो लोग ।
उनसे वर हैं चित्त से सच कहते जो लोग ।।

296·सत्य कथन सम जगत में और न यश का भोग ।
झूठ न कहना धर्म-फल देता है निश्शोक ।।

297· सत्यनिष्ठता सत्य से यदि अपनायी जाय ।
तो औ" सुकर्म बिनु किये रहना भी अनपाय ।।

298·होती बाहर नीर से शारीरिक है शुद्धि ।
होती भीतर सत्य से मानस की है शुद्धि ।।

299·अंधकार हर दीप सब दीप नहीं कहलाय ।
साधु जनों को सत्य का दीप दीप कहलाय ।।

300·देखे हमने जगत में भाव-विभाव अनेक ।
उनमें तजकर सत्यता बाकी भाव न नेक ।।

अमन्यु (अक्रोध)

301· कोप जहाँ हो विफल नहि, वहाँ दबावें कोप ।
दबा-दिखाकर क्या भला विफल धान में कोप ।।

302· जहाँ कोप है सफल नहि, वहाँ कोप नहि नेक ।
जहाँ क्रोध फलवान है, रिस भी वहाँ न नेक ।।

303· किसी जीव पर भी कभी नहीं दिखाना कोप।
अखिल अहित का मूल है माना जाता कोप ।।

304· स्मृति घातक औ" हर्ष का घातक है रिस भाव ।
उससे बढ है कौनसा विद्यमान रिपु भाव

305· निज का पालन यदि करें जो रिस से हो मुक्त ।
कोप मुक्त यदि हो नहीं, तो रिस निर्बन्ध युक्त ।।

306· कोपयुक्त है कोप की ज्वाला से मृत भूत ।
बांधव-पालन-नाव भी रिस से भस्मी भूत ।।

307· कोप-वस्तु को मानकर कौन न पाता खेद ।
भू पर कृत आघात से कर पाता दुख खेद।।

308· अनल-शिखा के सदृश यदि अहित किया ही जाय ।
जो भी भरसक कोप बिनु रहना हित समझाय ।।

309· इष्ट कार्य की सिद्धि तब होती है तत्काल ।
जब मानस में कोप का किया न जाता ख्याल ।।

310· कोपी को हम मानते हैं मृत मानव-तुल्य ।
कोपहीन को समझ लें संयासी नर-तुल्य ।।

311· निष्कलंक का लक्ष्य है महिमा गुण समवेत ।
वित्त प्राप्त भी कृति अन्य परहिंसा समवेत ।।

312· निर्दोष का लक्ष्य है रिस से परकृत हानि ।
तभी भूलकर और की नहि करनी प्रतिहानि ।।

313· अहित किये बिनु और का जो करता प्रति-हानि ।
उसको निश्चय बाद में होगी अपनी हानि ।।

314· अहितकरी की है सजा-लज्जित हो वह व्यक्ति ।
प्रतिकारी की तथ्यमय सुनकर हित की उक्ति ।।

315· पर दुख को निज खेदसम अवगत कर परिहार ।
यदि न करें तो बुद्धि यही रहने से क्या सार ।।

316· जो भी कृति अपने लिये अहितमयी ठहराय ।
अन्यों के प्रति कृति वही कभी किया नहि जाय ।।

317· श्रेष्ठ धर्म संसार में वही कहाया जाय ।
कभी किसी को अल्प भी नहीं सताया जाय ।।

318· जो कृति है अपने लिये हित नहिं समझी जाय ।
सो कृति औरों के लिये कैसे हितकर भाय ।।

319· अगर सवेरे और को दिया गया संताप ।
तो अपने को साँझ में होगा वह संताप ।।

320· अहितकरों को पहुँचते हो सारा दुख-शोक ।
सुखमय जीवन बीतने नहि देना दुख-शोक ।।

321· धर्म कार्य का अर्थ है जीव हनन का त्याग ।
जीव हनन सब पाप का दायक हो तू जाग ।।

322· भोजन करना बाँटकर, जीवरक्ष का कर्म ।
ग्रंथकार के शास्त्र में सर्वोपरि है धर्म ।।

323· जीवों की अनवध्यता सर्वोपरि है धर्म ।
सत्य बोलना दूसरा समझा जाता धर्म ।।

324· वही मार्ग संसार में कहलाता सन्मार्ग ।
जीव रक्ष मय नीति को कहता है जो मार्ग ।।

325· भव भय से तो भीत सब रहते हैं यति लोग ।
उनमें से भी श्रेष्ठ हैं अवध्य धर्मी लोग ।।

326· अवध नियम का अनुसरण करता है जो जीव ।
काल पाश से ग्रस्त नहि जीवन भर वह जीव ।।

327· यदि निज जन से प्राण भी विमुक्त हो ही जाय ।
तो भी ओ प्रिय जीव का नाश किया नहि जाय ।।

328· जीव हनन से भूरि धन यदि हो हितकर लब्ध ।
जो हो निकृष्ट सुमीत को वह धन वध से लब्ध ।।

329· वध जीवी जो लोग हैं, वे नहि है उत्कृष्ट ।
पालन धर्मी मानते उनको सदा निकृष्ट ।।

330· जीव वधक हैं सतत ही रोग सहित वपु-मान ।
उनका जीवन सुखद नहिं तथैव अभाववान ।।

331· मन्द बुद्धि की राय है जो है विनाशवान ।
नित्य समझना है उसे, यह मत है लघुमान ।।

332· रंग भूमि की भीड़सम धन बढता शुरूआत ।
सभा-विसर्जन-कालसम धन होता अवसाद ।।

333· चंचल गुण है वित्त का अगर मिलें तो चित्ता।।
उसी समय यसे धर्म में तत्पर होवें चित्त ।।

334· तत्व समझना चाहिये, नर-जीवन संहार ।
करता ही है क्रमिक से दिवसमयी अंसिधार ।।

335· गलावरोधन पूर्व औ हिचकी विहीन पर्व ।
तुरंत करना चाहिये पुण्यमयी कृति सर्व ।।

336· जो था कल, वह आज तो चला गया सुर लोक ।
इसी रीति की मुख्यता रखता है नर लोक ।।

337· जिनको नहि इक दिवस का जीवल-यापन बोध ।
सोचें सीमाहीन वे विचार विविध अबोध ।।

338· अंडे से होकर अलग खग उडता जिस भाँति ।
देही भी है देह से हट जाता उस भाँति ।।

339· मरण जन्तु का नींदसम जैसा माना जाय ।
जागृति-सम है जन्म तो वैसा जाना जाय ।।

340· कभी नहीं चिर गेह में निवास करता जीव ।
भाडे की सी देह में रहता हो जनु जीव ।।

341· जिन चीजों की चाह से जो होता है मुक्त ।
उन चीजों के क्लेश से वह होता है मुक्त ।।

342· धनवैभव के समय पर यदि चाहे सुख भोग ।
उनकी विरक्ति चाहिये जिससे हो बहु भोग ।।

343· पंचेन्द्रिय का दमन कर तजना है अनुराग ।
ऐसा करना चाहिये विषय सुखों का त्याग ।।

344· निस्पृहता तप के लिये सहज धर्म बन जाय ।
सस्पृहता फिर क्षोभ का कारण समझा जाय ।।

345· भव भय मुमुक्षु के लिये भारमयी है देह ।
फिर तो समझें दुखद है औ" पर रखना नेह ।।

346· मदीयता के गर्व जो करता है उत्सर्ग ।
प्राप्त करेगा विभु वही सुरदुर्लभ अपवर्ग ।।

347· मदीयता के भाव से नहि जो हुये विमुक्त ।
विपद-जाल भी नित नहीं उनसे कभी वियुक्त ।।

348· वे जाते हैं मुक्ति थल जो रहते निष्काम ।
फँसते हैं भव मोह में बाकी सभी सकाम।।

349· अनासक्ति ही जब हुई तब हो भव से मुक्ति ।
दिखती नहि अनुराग से भव संकट से मुक्ति ।।

350· सांसारिक अनुराग से चाहें हो निर्लिप्त ।
तो निसपृह हरि-भक्ति में रहना है नित लिप्त ।।

यथार्थ ज्ञान

351· असत्य में जब सत्य का बोध हुआ तो सोच।
भव दुख मूलक ज्ञान यह सभ्रम निः संकोच ।।

352· मोह विमोचित मल रहित सच्चा ज्ञान समेत ।
जो रहता है हो वही जाता मुक्ति समेत ।।

353: भ्रम संखय जो दूर कर पाता तत्व ज्ञान।
उसके समीप है खड़ा भू बढ मोक्ष जहान ।।

354· पंचेन्द्रिय का दमन भी अगर किया ही जाय ।
तो भी तत्व ज्ञान बिनु नहि है लाभोपाय ।।

355· चाहे जो भी चीज़ हो उसका अवितथ ज्ञान ।
अर्जित करना चाहिये वही तत्व का ज्ञान ।।

356· पढ़कर अर्जित कर चुके जो हो सच्चा ज्ञान ।
जायेंगे अपवर्ग ही भव बिनु वे मतिमान ।।

357· तत्व-विषय का अगर जो करता अनुसंधान ।
तो निश्चय ही समझ लो उसे न जन्म विधान।।

358· जन्म हेतु अविवेक है उसे हरया जाय ।
स्थाई विशेष बोध ही तत्व बोध ठहराय ।।

359· सर्वाश्रय को जानकर खोवे मदीय भाव ।
अनासक्ति से नहि कभी होते दुख के भाव ।।

360· राग कोप औ मुग्धता तजते हैं जो लोग ।
हो जाते हैं लोग वे स्वस्थ तथा निश्शोक ।।

लालसा का विसर्जन

361· जीव सभी को सर्वदा होती अवश्य चाह ।
जन्म बीज के रूप में सिद्ध हुई यह चाह ।।

362· करनी हो यदि कामना तो चाहो भव-नाश ।
जन्म नाश का हेतु है अभिलाषा का नाश ।।

363· निस्पृहतासम भूमि में और न कोई वित्त ।
उसके सम भी स्वर्ग में अनुपम और न वित्त ।।

364· निस्पृहता ही शुद्धता जग में समझी जाय ।
सच्चापन की चाह से निस्पृहता आ जाय ।।

365· समझें निस्पृह जीव को भव बंधन से मुक्त ।
जानें सस्पृह जीव को भव बंधन से युक्त ।।

366· लिप्सा से डरना बडा धरम कृत्य कहलाय।
लिप्सा-माया-जाल में नहीं फँसाया जाय।।

367· सै प्रतिशत चाह का जो करता संहार।
उसके समीप धर्म सब आते स्वेच्छाधार।।

368· तृष्णा विहीन जीव को कभी नहीं है शोक।
यदि हो अवश्य कामना तो हो फिर फिर शोक।।

369· यदि नित संसार में पाना हो आनंद।
दुख से दुखमय चाह का करना ही तो अंत।।

370· नित अतृप्तमय कामना मन से छोडी जाय।
तो निस्पृहता की दशा चिर सुखकर हो जाय।।

371· अर्थकरी उक्ष्म सिरफ् समझो भाग्याधीन।
धननाशक आलस्य भी जानो भाग्याधीन।।

372· वित्तनाश की बुद्धि का प्रदान करता भाग्य।
वित्त वृद्धि की बुद्धि का मूलभूत है भाग्य।।

373· पोथी पढकर क्या भला सहज ज्ञान है श्रेष्ठ।
सहज ज्ञान है नियतिगत विधि सब से है श्रेष्ठ।।

374· जग निसर्ग है नियतिवश, उसका है दो भेद।
वैभवयुतता अेक है, मतियुतता औ" भेद।

375· धन के अर्जन विषय में क्या ही माना जाय।
बुरा कभी बनता भला भला बुरा हो जाय।।

376· जिसमें नहि है स्वीयता पालन उसका व्यर्थ।
जिसमें रहती स्वीयता तजना उसको व्यर्थ।।

377· नियति दत्त परिमाण से ज्यादा या कम भोग।
प्राप्त नहीं करते सदा करोड़पति भी लोग।।

378· अगर नियति देतीनहीं दर्द भरी दुख शोक।
बन जाते धनहीन तो यति विमुक्त सुखभोग।।

379· सुख मिलता सत्कर्म से औ" दुष्कृति से शोक।
दुष्कृति मूलक खेद में अनुभव कर लें शोक।।

380· जग में बढकर भाग्य से क्या रहता बलवान।
किस मग से है दैव पर जय पाना आसान।।

नृप की महिमा

381 · सैन्य राज्य साथी सचिव, दुर्ग कोश षट्अंग ।
जो रखता है नृप वही, राजसिंह ह्वे सांग ।।

382 · राजा सदैव जगत में, योग्य वही कहलाय ।
ज्ञान दान उत्साह औ, जिसमें दृढता भाय ।।

383 · समझे जाते भूप के, स्वाभाविक है शील ।
पौरूष-विद्या-जागरण, ये तीनों ही शील ।।

384 · अनय नाश निज नय करण, वीरधर्म समवेत ।
वही भूप है राजता, तीनों गुणसमवेत ।।

385 · धन का अर्जन नित करें, धन का करें सुपाल ।
पालित धन का धर्म से, वितरण करें नृपाल ।।

386 · कटुक वचन बोले विना, मिलनसार है भूप ।
उसका शासन (श्रेष्ठ) है, तथैव सदा अनूप ।।

387 · मीठे वच से दानकर, जो ह्वे जनगण पाल ।
उसको जग देगा सभी, चिर यश इच्छित माल ।।

388 · जनता पालन नीति से जो करता मनुजेश ।
माना जाता है वही, बहुमत से सर्वेश ।।

389 सुनने में ह्वे कटु वचन, फिर हितकर गुरु वाक ।
सहता ऐसे वचन जो, उसके वश भूभाग ।।

390 · दीप सदृश वह भूप है, जो रखता गुण चार ।
दान दया शासन उचित, दलितों का उदार ।।

391 · विषय सभी है सीखना, विनु शक यथार्थ रीति ।
सीखे पथ पर गमन हो, यही हमारी नीति ।।

392 · गणित-रीति के ग्रंथ सब, सर्वोपरि कहलाय ।
जीवों के ये दो नयन, सदैव समझे जाय ।।

393 · जो रखते हैं ज्ञानदृग वे सचमुच दृगवान ।
बाकी सब के नयन दो, समझें घावसमान ।।

394 · विबुध रत्न तो है वही, जिसका मुदकर योग ।
औ हो जिसके विरह में, फिर विचार-संयोग ।।

395 · धनी-सामने रिक्तवत्, सिखते हैं पटु लोग ।
समझे जाते हैं सदा, बाकी अनपढ लोग ।।

396 · ज्यों सैकत में खनन से, बढती पानी-धार ।
त्यों पढपढ कर मनुज की, बढती विवेक धार ।।

397 · पढे लिखे नर केलिये, ग्राम-देश सब स्वीय ।
इस स्थिति में नहिं सीखना, क्यों नहि विगर्हनीय ।।

398 · एक जन्म में अधिकृता, विद्या अखंड धार ।
सात जन्म तक भी उसे, कर लेगी उपकार ।।

399 · निज पर दोनों के लिए, विद्या सुखकर योग्य ।
अवगत होकर बुध उसे, कहते शंसन-योग्य ।।

400 · विद्यारूपी वित्त इक थिर है तथैव उच्च ।
बाकी धन धन ही नहीं, वे न कभी नहिं उच्च ।।

अनध्ययन की हेयता

401. सभा बीच में बोलना, पढे विना सद्ग्रंथ ।
पासे का है खेल रज्यों, बिनु चौसर का अंत ।।

402. अनपढ का भाषण-जतन, विद्वज्जन के बीच ।
ज्यों स्तनहीना स्त्रीत्व की, इच्छासम है नीच ।।

403. अनपढ मौनी यदि रहें, विद्वज्जन के बीच ।
तो वे नहि परिहास के, होंगे औ के बीच ।।

404. अनधिकृता गुरु-लपन से, जो विद्यामिल जाय ।
नहि स्तुति उस वर ज्ञान की, करता बुध-समुदाय ।।

405. मिथ्या-गौरव अपढ का, बुधजन-भाषण काल ।
गायब होता आप ही, यह है सच्चा हाल ।।

406. बंजर-समान जगत में, जो हैं विद्याहीन।
यदपि मनुज हैं तदपि वे, निश्चित लाभ विहीन ।।

407. सूक्ष्म-शास्त्र के ज्ञान बिनु, जो रखते तन-रूप ।
वे मृण्मय पुतला सदृश, हैंतो भारसरूप ।।

408. बुधगत दारिद से कही, मूढलब्ध धंन भूति ।
बेशक है दुखदायिनी, इसमें न शकानु भूति ।।

409. अनपढ का कुल उच्च हो, या तो होवें नीच ।
कुलीन भी मानित नहीं, बुधसम जनता बीच ।।

410. मनुज और जानवर में रहता है विभु भेद ।
ज्यों शिक्षित औ अपढ में विवेता सम्यक् भेद ।।

शिक्षित से कई विषय सुन लेना

411· सभी धनों में श्रवणमय धन घोषित इक वित्त ।
शेष धनों में से प्रथम माना जाता श्रुतिवित्त ।।

412· श्रवणमयी भोजन रहित, जब होते निज कान ।
भोजन तन को देय तब, नहि सुनना बिनु कान ।।

413· इह कानों से श्रवणमय, भोजन सेवी लोग ।
माने जाते सुरसदृश, करते हवि का भोग ।।

414· साध्य नहीं अध्ययन यदि, पावें श्रुति से ज्ञान ।
वही सहायक खेद में, हो करयष्टिसमान ।।

415· सदाचारयुत मनुज की, वाणी लोकसहाय ।
कीचडगामी को यथा, हो करयष्टिसमान ।।

416· ज्ञान तत्व सुनना हमें, जब कि समय मिलजाय
सुनकर अकसर ज्ञान वह पूर्ण रूप बन जाय ।।

417· संत बहुश्रुत भी कहीं, भ्रम से तत्वविहीन ।
होकर भी वच नहि कहें, भ्रमकर असमीचीन ।।

418· सुनने से ही शास्त्र सब, सार्थक होवे कान ।
औ सुनकर हो ही श्रवण, बहरापन युत कान ।।

419· जो श्रावक हैं शास्त्र के, मृदु भाषी वे नम्र ।
बाकीमृदुभाषी नहीं, तथैव नहि हैं नम्र ।।

420· षड्रस का जो स्वाद कर नव रस भोगविहीन।
जीवित होकर भी उसे समझो-प्राणविहीन ।।

सच्चा ज्ञानी बनना

421. अहित नाश का मूल ही ज्ञान कहाया जाय ।
रिपुसे अगम्य दुर्गसम, वह पालित हो जाय ।।

422. ज्ञान-लब्धि का लाभ है, अघ से चित्तनिवृत्ति ।
और कृत्य के करण में, मन की सदा प्रवृत्ति ।।

423. है बहु बातें श्रवणकर, उन में जो हितवान ।
यों निर्णय में जो मदद, देता वह हो ज्ञान ।।

424. ज्ञानी बनता है वही, जो बोलें वच साफ ।
और दुरुह भी विषय को, अवगत करता साफ ।।

425. ज्ञानी सुख औ विपद में, रखता है समभाव ।
पाता तथैव ज्ञान से, गुरूजन मैत्रीभाव ।।

426. जैसा जगदाचार है, वैसा उसके साथ ।
चलना ही मतिमान का, निशान है विख्यात।।

427. भावीवेत्ता जगत में, सुविदित है धीमान ।
भावीवेत्ता जो नहीं, विदित न वह धीमान ।।

428. पाप भीतिकर काम से, नहि डरते मतिहीन ।
पर डरते है लोग बुध, कृति से सुपुण्यहीन ।।

429. भाविशोक का नाशकर, निज पालक धीमान ।
भोगेगा नहीं शोक कटु, बुध का यही निशान ।।

430. ज्ञान मात्र से सहित जो, बनता है संपन्न ।
बिना ज्ञान औ सर्वयुत, नहि बनता संपन्न।।

दोष दूर करना

431. जो नर रहता है सदा, गर्व-कोप-मदहीन ।
उसकी विभूति श्रेष्ठ है, तथैव लघुताहीन ।।

432. उचित पात्र को दान नहि, मिथ्याभिमान शील ।
अनर्ह थल पर अमित मृद, नृप के ये दुश्शील ।।

433. तिल भर के अपराध को, ताड सदृश सुमहान ।
स्वीकृत कर हो लोग बड, अघ से विमुक्तिमान ।।

434. नाशकरी रिपु-सदृश हो, जनता को ही दोष ।
जीना है अपराध बिनु, सद्गुण है निरदोष ।।

435. कसूर होने के पहल, जो न करें निज त्राण ।
पावक सम्मुख तृण, यथा मिटता उसका प्राण ।।

436. निश्मन कर के दोष निज, और दोष का दूर ।
करने जो उत्सुक कभी, वह नहि सदोष क्रूर ।।

437. व्यय धार्मिक करता नहीं, भुक्त हि नहीं निजार्थ ।
है धनपालक कृपण को, नहि तीनों पुरुषार्थ ।।

438. धनलोलुपता लोभ का, अपर नाम है, जान ।
षट दोषों से प्रमुख यह, साधारण नहि, जान ।।

439. अवसर पाकर भी कभी, करें न निज गुण-गान ।
व्यर्थ कार्य के सोचना, हित का नहीं निशान ।।

440. प्राप्त चीज का भोग भी, कर लो खुद एकान्त ।
गुप्त-भंग से लक्ष्य का, करते हैं रिपु अंत ।।

441· ज्ञान वृद्ध धर्मज्ञ औ, बुध की दोस्ती खूब ।
सोच सोच कर बारबहु, कर लें घनिष्ट भूप ।।

442· प्राप्त शोक को दूरकर, भावीशोकनिरोध ।
करने सतर्क व्यक्ति की, मैत्री हो अविरोध ।।

443· वही भाग्य है श्रेष्ठतम, जिसका हो सत्संग ।
और संत का बंधुबन, रहना ही निश्शंक ।।

444· निज से महान पुरूष का, अनुवर्तन हो जाय ।
नृप को यह चतुरंग से, बलिष्ट समझा जाय ।।

445· विचार कर ही भूप से, दृगसम सचिवनियुक्ति ।
जिससे शासन भार वह, ढोकर दें नृप-युक्ति ।।

446· निज मति से औ संत की, सलाह से जो राज ।
करता है कुछ नहि उसे, करता शत्रु समाज ।।

447· ऐसे नृप को शत्रुगण, पहुँचाता नहि हानि ।
जिसका सचिव हि भूल में, कहता हो कटु वाणि ।।

448· नृप रिपुबाधाहीन भी, तब पाता खुद नाश ।
कटु आलोचक से रहित, जब हो सुबंधु-नाश ।।

449· पूँजी बिनु व्यापार में, नहि मिलता है लाभ ।
बिना बडों की मदद नृप, नहि पाता दृढलाभ ।।

450· जो नृप खोता संत की, संगति खुद ही प्राप्त ।
सो रिपु से दसवाँ गुणा, क्षति करता है प्राप्त ।।

451· दुष्ट संग से भीत हो, अलग रहें बड लोग ।
बंधु मानते दुष्ट को, हर्षित नीच हि लोग ।।

452· भूमि भेद से भिन्न रस, ज्यों पाता है पानि ।
त्यों नर संगति-भेद से, रखता बहु मति वाणि ।।

453· साधारण मय ज्ञान का, मन होता है मूल ।
भले वुरे के ज्ञान का, संगति ही है मूल ।।

454· विवेक भी मन में उदित, होता है तू जान ।
पर उसका भी मूल है, संगति तू पहचान ।

455· चित्तशुद्धि कृति शुद्धि का, क्या हो सकता मूल ।
सत्संगति हो मनुज के, दोनों का ही मूल ।।

456· जैसे नर हैं पूतमति, वैसी हो सन्तान ।
सत्संगतियुत मनुज को सब कुछ शुभशुचिमान ।।

457· चित्तशुद्धि से जीव को, मिलती धनाभिवृद्धि ।
सत्संगति दें जीव को शचियुत यंशोभिवृद्ध ।।

458· कुछ में अच्छे कर्म से, चित्तशुद्धि हो आप ।
चित्तशुद्धि की वृद्धिकर, सत्संगति का लाभ ।।

459· चित्तशुद्धि से लोग कुछ, पाते ऐहिक भोग ।
भोग-विघ्न का नाशकर, संतों का हो योग ।।

460· सत्संगतिसम और नहि, आमोदकरी मित्र ।
दुस्संगतिसम और नहि, पीडाकरी अमित्र ।।

खूब सोच विचार कर काम करने की रीति

461· पहले व्यय फिर लाभ की, चर्चा नित की जाय ।
फिर ही ज्ञानी काम में, तत्पर हो लग जाय ।।

462· विमर्शकर पटु मित्र से, फिर खुद सोच विचार ।
जो करता है कृति उसे, कठिन न कारोबार ।।

463· भावि लाभ की चाह से, करगत पूँजी माल ।
बुद्धिमान करते कभी, नहि हैं इस्तेमाल ।।

464· बिना किये ही लाभ की, सीमा का सुविचार ।
मानभीरू सहसा नहीं, करते कारोबार ।।

465· देश काल औ शत्रुबल, समझे विना हि भूप ।
यदि रणरत हो जो उसे, रिपुहित नष्ट अनूप ।।

466· अकृत्य करना कृत्य का, तजना दोनों काम ।
निधनमूल जन के लिए, नहि मिलता आराम ।।

467· कार्यसिद्धि पहचानकर, अपनाओं निजकाम ।
कृत में उपाय सोचना, असफलता का काम ।।

468· मिलने पर भी बहु मदद, चारों ही पुरुषार्थ ।
जो लाता नहि काम में, वह कृति में असमर्थ ।।

469· जो पर गुण समझे बिना, बनता है कृतिमान ।
उसका प्रयास हो सभी, दोषों से युतवान ।।

470· अपनी सीमा जानकर, करना सब कुछ काम ।
नहि तो निन्दा लोक की, औ होगा बदनाम ।।

471· स्वीकृत कृति की प्रबलता, रिपु औ निज की शक्ति
लग जा कृति में जाँचकर, दोनो दल की शक्ति ।।

472· कार्य-सिद्धि युत शक्ति की, खूब जाँच की जाय ।
ऐसे साधक को सभी, कार्य सरल हो जाय ।।

473· निज बल थोड़ा भूलकर, सिर्फ जोश से कार्य ।
जो करते हैं बीच में, होते विघ्नित कार्य ।।

474· निजबल जाने बिना, किये बिनु च पर-नेह ।
आत्मश्लाघा शील की, मिटती सर्वाधि देह ।।

475· पंखसदृश लघु सृजन से, नही शकट की हानि ।
अधिक भार के वहन से, अक्ष भंग की हानि ।।

476· पेड़-शिखर पहुँचकर भी, फिर आगे बढ़ जाय।
डाल भग्न हो जीव भी, गिरकर मृत हो जाय ।।

477· यथाशक्ति जो धर्म से, करता है धन-दान ।
उसका धन सदैव नही, पावेगा अवसान ।।

478· अगर आय कम हो सदा, तो भी वह नहि दोष ।
व्यय बहुतो यदि आय से, संभव हो बहु दोष ।।

479· अर्जित से जो अधिक धन, करता है नित खर्च ।
उसका धन थिर है नहीं, मोहसमान विवर्ज ।।

480· जो रत परोपकार में, बिनु सोचे ही आय ।
उसका धन तो शीघ्रही, कम होता रह जाए

काल का बोध-समयोचित कार्य जानना

481· पा लेता है दिवस में, उलूक पर जय काक ।
उचित काल की ताक में, रहता नृप जय-भाक् ।।

482· सोच सोचकर बार बहु, उचित काल में काम ।
शुरू किया जो वह करें, अस्थिर को थिर दाम ।।

483· उचित काल में युक्तियुत, जो करता है काम ।
उसकी कुछ भी कठिन नहि, साध्य सभी हैं काम ।

484· जो लगता है काम में, कालस्थलानुसार ।
कर सकता है राज्य वह, वशकर सब संसार ।।

485· जग-शासन की चाह यदि, हो तो फिक्र न लाभ ।
उचित काल की ताक में, रह निष्क्रिय चुपचाप ।।

486· जयरत अज का पृष्ठ तक, गमन-नीति है ठीक ।
रणविमुखी नृप समय ही, ताकें चुप हो ठीक ।।

487· हैं बुध रिपु के सामने, नहीं दिखाते कोप ।
कार्य साधते काल में, अन्दर हीं रख कोप ।।

488· नाशकाल होते समय, रिपु-सिर गिरता आप ।
तब तक जिगीषु मनुज को, रहना है चुपचाप ।।

489· सही काल मिलते समय, फिरनहि मिलना साध्य ।
ऐसा कृतिकर सोचकर, लखना समय असाध्य ।।

490· कार्यकाल तक बकसदृश, रहना निष्क्रिय मौन ।
कार्यकाल में कार्य को, सफल करो बिनु मौन ।।

स्थल का बोध-कार्य-पूर्ति के लिए उचित जगह जानना

491. शुरू न करेकोई करम, रिषु निन्दा तजनीय ।
जब तक सैनिक दुर्ग की संस्था न स्थावनीय ।।

492. दृढपालित थल पहुँचकर, विशिष्ट जल संपन्न ।
नृप को जो जय लब्ध है, वह हित से सेपन्न ।।

493. पाकर पालित जगह को, निज पालन में लीन ।
रणरत दुर्बल भूप भी, बनता प्रवलाधीन ।।

494. उचित जगह पहचानकर, उस थल से रणमग्न ।
नृप को लखकर शत्रुजन, हो जाते भयमग्न ।।

495. गहरे जल में मगर की होती नहि है हार ।
वही किनारे दिख पडे, वनता निजल-शिकार ।।

496. सबलचक्रयुत रथ बडा, न सिन्धु पर गमनीय ।
जलगामी नावें सभी, भू पर नहि गमनीय ।।

497. यदि नृप समुचित देश पर, रहकर बारवार ।
कर विचार कृति में लगें, तो निश्चित जयकार ।।

498. अल्पसैन्ययुत भूप यदि, गुप्तस्थलसमवेत ।
हाना पायेगा निधन, रिपुबहुवलसमवेत ।।

499. दुर्गस्थल विहीन तथा, असररहित नरनाथ ।
है अजेय यदि वह रहें, निज थल पर दिनरात ।।

500. शूलपाणियुत वीर का, वधकर दंतसमेत ।
हो गज यदि पंकगत तो सियार जीतसमेत ।।

जाँचकर भरोसा करना- सोच विचार कर उम्मीद करना

501· धर्म अर्थ इच्छा तथा प्राणभीरूता चार ।
युक्ति जाँचकर दूत पर सौंपो कारोबार ।।

502· जिसमें है निर्दोषिता, पाप भीरूता लाज ।
औ कुलीनता है वही, नृप का प्रत्यय-भाज ।।

503· दोषरहित बहुग्रथक, वेत्ता है धीमान ।
असकृत उनकी जाँच से, दिखता है अज्ञान ।

शास्त्रीय तामिल पुस्तकालय, CIIL LIBRARY Acc. No CT 85335 CLASSICAL TAMIL LIBRARY MYSORE

504· गुणावगुण को जानकर करो गुणी स्वीकार ।
अवगुणवाले को सदा नहीं करो स्वीकार ।।

505· गुरूता-लघुता व्यक्ति की, तत्कृतकृति की जाँच ।
करके जाहिर है यथा, बनें कसौटी साँच ।।

506· बंधुहीन जन पर कभी, नहि रखना विश्वास ।
बंधनविहीन धैर्य से, रखता है सब आस ।।

507· प्रत्यय करके अज्ञ पर, उनका कार्य-नियोग ।
फलदायक होगा न औ, हो नृपबुद्धि-विवोग ।।

508· जो कृति पर अज्ञात का, करता है तैनात ।
वह खुद पाता है निधन, औ संतति-आघात ।।

509· प्रत्यय करना चाहिए, जन पर सोच-विचार ।
आशा सह विश्वस्त का, कृतिनियोग सत्कार ।।

510· आशा रखना नफर पर, सोचे बिना न ठीक ।
निराश रखना नफर पर, सोचकर भी न ठीक ।

511· बुरा भला जो जाँचकर, भला चाहता रोज ।
काम-काज है सौंपना, करके उसकी खोज ।।

512· आय तरीका जाँचकर, जो बनता धनवान ।
राजकाज पर शक विना, नियुक्त हो वह, जान ।।

513· ज्ञान नेह निर्मात्य औ, वित्त लोभ ये चार ।
जिसमें रहते वह करें, राजकीय व्यापार ।।

514· शील जाँच में विजित कुछ, पद पर विराजमान ।
आखिर पद के मोह से, बनते कुबुद्धिमान ।।

515· राजकीय कृति पर नियत, करना उसे कसूर ।
जो कृति करने चतुर नहि, कठिनाई कर दूर ।।

516· नृप से नियुक्त है वही, जो तो कर्त्ता-शील ।
क्रिया-तत्व औ समयका, करता है परिशील ।।

517· अमुक हेतु से अमुक कृति, करने जो है योग्य ।
ऐसा विचार कर वही, राजकाजपर योग्य ।।

518· समर्थ पर कृति भार दें , फिर करने अधिकार ।
अस्को देना चाहिए, यह है राजाचार ।।

519· बधुसदृश स्वीकृत करम, जो करता सप्रेम ।
निकालनेवाला उसे, खोता लक्ष्मीप्रेम ।।

520· यदि खुश हो मजदूर सब, तो हो खुश संसार ।
मजदूरों को नृप करें, चिन्तामुक्त अपार ।।

521· निर्धनता में पूर्वकृत, बंधुजनों की प्रीति।
याद दिलाकर सुस्तवन, यह है बांधव-रीति ।।

522· अगर किसी को प्रेमयुत, रिश्ता ही मिल जाय।
तो सब हितकारक उसे, रिश्ता ही हो जाय।।

523· प्रेमयुक्त रिश्तारहित, जीवन नहि है धन्य।
ज्यो जल से भर ताल का तीराभाव जघन्य ।।

524· बधुसाहयकर जो सदा, रहता बंधुसमेत ।
उससे अर्जित वित्त तो, होगा लाभसमेत।।

525· जो धन देता बंधु को, प्रिय भाषण के साथ ।
घिरा हुआ है वह सदा, बंधुजनों के साथ ।।

526· दानशील जितमनयु नृप, रहता है स्वाधीन ।
पर होते हैं जगत मे,उसके सभी अधीन ।।

527· वायस स्वार्जित धान को खाता काकसमेत ।
यों होगा धनवृद्धिकर, खाना बंधुसमेत ।।

528· साम्यबुद्धि बिनु जो लखें क्षयता के आधार ।
उस नृप के बनते सभी, घनिष्ट रिश्तैदार ।।

529· कारणवश थित बंधुता, अगर टूट हो जाय ।
फिर औ कारणवश वही, यथा पूर्व उग जाय ।।

530· नाता तज फिर हेतुवश, जो आ पहुँचा जाय ।
विचार कर नृप भी उसे, स्वीकृत किया हि जाय ।।

531· सुखानुभव में लग्न हो, फरज न करना भूल ।
कोपजानित दुख से अधिक, हो दुखदायक मूल ।।

532· ज्यों निर्धनता मनुज की, करती है मतिहानि ।
त्यों ही असावधानता, करती यश की हानि ।।

533· विस्मृति सिनफ न भूप को, अपयशकर हो जाय ।
पुरुषार्थी को किन्तु वह, अपयशकर ठहराय ।।

534· रहने पर भी दुर्ग में, नहीं भीत को लाभ ।
विस्मृतिवाले को यथा, धन से नहि है लाभ ।।

535· पहले समुदित शोक को, विस्मृति से न निकाल ।
प्राप्त शोक से मनुज है, पछताता बहुकाल ।।

536· सभी काल में हर जगह, अप्रमादसम चीज ।
और न कोई जगत में, हितसुखकारक चीज ।।

537· विस्मृतिविहीन मनुज को, कोई नहीं असाध्य ।
पर विस्मृतियुत मनुज को कोई भी नहि साध्य ।।

538· नीतिमान का स्तव कथन, कार्यान्वित कर शान ।
करे न उसका भूल कर, सात जन्म सुनसान ।।

539· सुख में जो है भूलता, फरज गर्व के साथ ।
अविस्मरण सोचें वही, क्षतिगत नर की गाथ ।।

540· वांछित फल है प्राप्तकर, सकता वह इनसान ।।
जो विस्मृति बिन जागकर, कृति में प्रयत्नवान ।।

नीति-परिपालन

सुनीति से शासन करने की रीति

541·नीति-रीति है भूप की, अनीति विन रह बीच ।
शास्त्र रीति से दण्ड नित, देना जनता-बीच ।।

542·जीव राशियाँवृष्टि का करती हैं अभिलाष ।
ज्यों जनता नय राज का करती हैं अभिलाष ।।

543·भूसुरपालित वेद औ, उसमें वर्णित धर्म ।
लक्ष्य बनाकर उभय को, नीतिगमन नृप-धर्म ।।

544·जनता के अनुसार जो, नय से करता राज ।
उसे देखता प्रीति से, सारा मनुजसमाज ।।

545·नीतिशास्त्रगत धर्म से, जो करता है राज ।
उस थल में जल बरसकर, होगा सस्यविराज ।।

546·सिरफ हाथगत शूल से, नृप नहि पाता जीत ।
ऋजु से देना दण्ड हो, सहाय पाने नीत ।।

547·नीति दण्ड से भूप यदि, जगपालक हो जाय ।
वही दण्ड तो शक बिना, नृपपालक बन जाय ।।

548·जनदर्शी हो सुलभ से, सुनकर उनकी माँग ।
नृप करता है न्याय नहि, औ पाता क्षति दाग ।।

549·पालन जन का शत्रु से, अपराधी का पाप ।
निरसन करना,दण्ड से, नृप के फरज न पाप ।।

550·कटुपारी को विहित है, मृत्यदण्ड का दान ।
फसल बढाने के लिए, घास-उखाड़समान ।।

अनीति से शासन करना

नीतिच्युत शासन रीति से अत्याचार

551·अधर्म पथ पर गमन कर, जनदुखकारी भूप ।
निर्दय घातक से भयद, कठोर मनुज सरूप ।।

552·कर-धन बिनु औ वित्त को, पाना चाहें भूप ।
ज्यों यात्री से माल का, हर्त्ता चोरसरूप ।।

553·सवाल दैनिक प्रश्न का, नहि देता जो भूप ।
धीरे धीरे तो राज्य निज, खोयेगा वह भूप ।।

554·भावी विपत्ति सोच विनु, अधर्म से नृप राज ।
अगर करें तो भूप-धन, नष्ट व मनुजसमाज ।।

555·अधर्म शासक भूप के, जन का आँसूजाल ।
भीम शस्त्र बन भूप का, नष्ट करेगा माल ।।

556·धर्म-रीति से राजकर, थिर यश पाता भूप ।
अधर्मगति से राजकर, खोता है यश भूप ।।

557·निर्दय नृप रके देश के, निवासियों का हाल ।
वृष्टिरहित थल के यथा, निवासियों क हाल ।।

558·अभावसम धन भीत भी, शोकवरी बन जाय ।
भूपधर्म तजकर जभी, शासन करता जाय ।।

559·नीति मार्ग से च्युत अगर, शासन करें नरेश ।
क्रम से भी नहि मेघ तो, देता जललवलेश ।।

560·अधर्म शासित राज में, विप्र भूलते वेद ।
औ गायें देती न पय, सचमुच यह है खेद ।।

डरावना कार्य न करना
प्रजा के लिए भयप्रद काम न करना

561 तटस्थ होकर दुष्ट को, विचार कर फिर दोष ।
करने देता जो नहीं, वही भूप निर्दोष ।।

562· दोषी के प्रति क्रूर हो, दण्डकाल में अल्प ।
जो देता है उएड वह, रखता वित्त अनल्प ।।

563· अधर्म-पालन से सभी, लोग भीत हो जाय ।
ऐसा नृप तो शीघ्र ही, जरूर बिगडा जाय ।।

564· भूप हमारा क्रूर है, सुनकर ऐसी बात ।
होकर नृप की आयु कम, विनष्ट हो अचिरात ।।

565· सुलभदर्शी हि जो तथा, अप्रसन्नमुख भूप ।
है उनका धन भूत से, पालित वित्त सरूप ।।

566· जो नृप दयाविहीन है, जिसका वचन कठोर ।
उस नृप की धन-दया फल भर हो कमजोर ।।

567· कटुक वचन ही बोलना, दण्डदान अनरीति ।
दोनो रिपु को जीतने, बलकारक नहि रीति ।।

568· उस नृप का धन नष्ट हो, जो कृतिकर अधिकार ।
असफल कृति से सचिव पर, करता दोषविचार ।।

569· सुदृढ दुर्ग से हीन नृप, यदि रणरत हो जाय ।
बंधुहीन रिपु भीत तो, झट वह विगडा जाय ।।

570· ऊँचे पद पर अपढ को, नियुक्त कर यदि राज ।
करें भूप तो अपढ से, भू को भार न लाज ।।

परिचित व्यक्तियो के वचन न भूलना ।

571·करुणारूपी रम्यता दिखती है हर ओर ।
इसीलिए जग ना कभी, जाता क्षति की ओर ।।

572·दया भाव यदि है नही, तो नहि है संसार ।
जीना निर्दय मनुज का, समझो जग का भार ।।

573·गीत बिना साहित्य के, नहीं फायदेमन्द ।
ज्यों करुणाविहीन नयन, नहीं फायदेमन्द ।।

574·करुणा पूरित यदि नयन, ना तो है नहि लाभ ।
वे मुख के भूषण बनें, नहि कोई औ लाभ ।।

575·करुणा भूषण नेत्र का, सदैव मानी जाय ।
दृग-भूषण नहि तो नेत्र को, व्रणसम समझा जाय ।।

576·नयन सहित नर यदि रहे, दया भाव से हीन ।
उसको तो समझो सिरफ, पादप चेतनहीन ।।

577·करुणाविहीन मनुज को, समझो अंधसमान ।
करुणागुणयुत मनुज को, समझो ही दृगमान ।।

578·जो करता है निज फरज, औ हो करुणावान ।
उसके वश में जगत है, सुस्थिर विराजमान ।।

579·अपराधी पर डालना, अनुकंपा की दृष्टि ।
और सहन करना उसे, नृप की सद्गुण-सृष्टि ।।

580·मित्रदत्त विष का अशन, करना प्रत्यय मूल ।
औ मैत्री भी मोलना, दया-कामना-मूल ।।

गुप्तचरों का उपयोग

गुप्तचरो के सामर्थ्य जानकर शासने करना

581·नीति-शास्त्र औ गुप्तचर दोनों नृप के नैन ।
उनके द्वारा नृप करें राजकाज दिन-रैन ।।

582·सभी काल औ देश में, जो होती है बात ।
उसे जान नृप चार से, पालक हो अचिरात ।।

583·खबर जानकर चार से, अगर न करें विचार ।
नृप रिपुवश में ग्रस्त हो, खुद पाता संहार ।।

584·दूत बंधु औ शत्रु की, कथनी, क्रिया-विचार ।
जो नृप की देता खबर, वही बना है चार ।।

585·औरों को जाने विना, धरकर वेषाकार ।
रिपु-संमुख होकर निडर, गोपनपटु है चार ।।

586·भिक्षुवेषधर शत्रु से, शंकेत सुदृढाचार ।
जाकर शस्त्रागार भी, विषय जानता चार ।।

587·निज पटुता से भेद बहु, बाहर करके व्यक्त ।
यथारीति नृप को उसे, चर करता है व्यक्त ।।

588·एक चार की खबर से, अन्य चार की बात ।
मिलती हो तो ही उसे, कर लो आतमसात ।।

589·चार परस्पर विदित विन, करें कर्मचर तीन ।
उनमें हो तो एकता, उसे गहें शकहीन ।।

590·नृपचर को यदि भेंट दें, तो देना अतिगुप्त ।
प्रकट करें तो खबर सब, नहीं रहेगी गुप्त ।।

दिल के उत्साह के साथ कार्य करना

591·जो नर है उत्साहयुत, वह है वैभववान ।
निरुत्साह शेषयुत भी, नहि है वैभववान ।।

592·उद्यमसमान चिर न औ, कोई जग में वित्त ।
गायब होते शीघ्र ही, और सभी तो वित्त ।।

593·धन के बदले जो रखें, अपने में उत्साह ।
खोकर भी वह शेषधन, नहि भरता है आह ।।

594·कुंठित नहि है सर्वदा, जिसका तो उत्साह ।
अनाहूत भी श्री उसे, पाती चलकर राह ।।

595·कुसुमनाल की दीर्घता, नीरागाधसमेत ।
ज्यों जितना उत्साह है, उतनी आयुसमेत ।।

596·नृप निज उन्नति के लिए, सोचें ही दिनरात ।
कार्य-सिद्धि पर हो नहीं, यत्न न धोना हाथ ।।

597·बाणविद्ध भी गज यथा, तजता नहि गांभीर्य ।
पाने पर भी कष्ट बहु, उद्यमी न निर्वीर्य ।।

598·दानशील हैं हम सभी-यों कर सदा विचार ।
उत्साहहीन नृप कभी, नहि पाते सत्कार ।।

599·उत्साही शार्दूल को, लखकर विशालकाय ।
भीमदाँत युत भीत गज, करता दौड-उपाय ।।

600·जग में जनता केलिए, बलिष्ट है उत्साह ।
निरुत्साह नर दीखते, तरुसम बिन फल-छाह ।।

आलस्य रहितता

आलस्यबिनु काम करने की महत्ता

601·प्रभारहित कुलदीप को, आलसमय तम घेर।
दीप्तिहीन कर है उसे, करता शमित अँधेर ।।

602·निज कुल-गौरव-कामना, करते हैं जो लोग ।
करते हैं आलस्य का, विनाश ही वे लोग ।।

603·अहितकरी आलस्य का, जो बनता है दास ।
उसका विनाश पूर्व ही, होता कुल का नास ।।

604·जिसमें है आलस्य औ, निश्छल नहीं प्रयास ।
कुल-गौरव भी लुप्त हो, होते दोष-विकास ।।

605·निद्रा विलंब भूल औ, सुस्ती से युत लोग ।
जल में निमग्न नावगत, नरसम पाते शोक ।।

606·राजकीय धन सुस्त को पावें अपने आप ।
फिर भी उससे सुस्त को कोई खास न लाभ ।।

607·जो रहते हैं आलसी, किये विना हि प्रयास ।
वे दोस्तों के सामने, पाते हैं उपहास ।।

608·बनते कुलीन अगर हैं आलस्य के अधीन ।
तो वे होते शीघ्र ही, रिपु के हाथा धीन ।।

609·जो आलस्यमय दोष का, बनता नहीं अधीन ।
पावें वही कुलीनता, नरता दोष विहीन ।।

610·तीनों पग से विष्णु ने, स्वयं बनाया व्याप्त ।
वैसे आलसहीन नृप, शासक हो भू-व्याप्त।।

प्रयत्नशीलता

लगातार परिश्रम से प्राप्त भलाई

611·यह करना दुस्साध्य है - मनो भाव यह छोड ।
कार्यसिद्धि में बलकरी, सिरफ यत्न बेजोड ।
612·कर्तव्यहीन मनुज को, त्यागेगा संसार।
इसीलिये हर कार्य में, निष्क्रियता परिहार ।।

613·लगातार जो यत्न में, रहता है तल्लीन ।
उसमें परोपकारगुण, होगा विदित हसीन ।।
614·यत्नहीन जो है वही, क्या करता उपकार ।
असि धारी यदि भीत हो, तो क्या होगा वार ।।
615·सुख में निमग्न हो नहीं, जो कृति में तल्लीन ।
स्थाणुसदृश वह नित रहें, बंधुशोकहर दीन ।।

616·प्रयास देगा भूप को, लगातार धनयोग ।
निष्क्रियता देगी उसे, निर्धनता का योग ।।

617·काली ज्येष्ठा निवसती, आलसयुत के पास ।
लक्ष्मी खुद है निवसती, यत्नवान के पास ।।

618·सत्य जानकर कार्य की रचना में कृत यत्न ।
यदि न सफल हो अपि तथा, दूषित नहीं प्रयत्न ।।

619·यदि विधि ही उल्टा रहें, तो भी करें प्रयास ।
फल पूरा यदि ना मिलें, व्यर्थ न देहायास ।।
620·बिनु आलस जो कार्य में, सयत्न है त्रुटिहीन ।।
वह निज बाधक भाग्य को जीतेगा कालीन ।।

दुख में भी आनन्दित रहना
संकट में विचलित न होना

621·दुख पडने पर फिक्र बिन, रहना हे सानंद ।
दुखहर औ कोई नहीं, केवल वह आनंद ।।

622· बाद-सदृश है शोकदुख, होते बारंबार ।
उनको मन में सुख समझ, बुध नहि शोकशिकार ।।

623·संकट पडने पर जो सदा, बनते नहीं विषन्न ।
वे युकते हैं काम कर, दुख का दुख उत्पन्न ।।

624·बैल शकट में बद हो, जाता है गन्तव्य ।
शोक दूर करना यथा, सयत्न को मन्तव्य ।।

625·लगातार दुख आ पडे तो भी जो धृतिमान ।
संकट पाकर भी उसे, खुद दुखता नहि आन ।।

626·धन पाकर भी जो नही, रहते हैं सन्तुष्ट ।
धन खोकर भी वे सदा, रहते नहीं अतुष्ट ।।

627·दुख का निवास देह है, ऐसा सोच विचार ।
करके ज्ञानी शोक में, न करें व्यथिताचार ।।

628 सुख का इच्छुक हो नहीं, दुख पाना विधि-कर्म ।
ऐसे विचारशील को, कोई नहि दुखकर्म ।।

629·सुख में सुख की कामना, करते नहि जो लोग ।
दुख में भी संतापको, नहि पाते वे लोग ।।

630·जिसकों लगता शोक भी, है सुख हर्ष समान ।
उसको मिलता शत्रु से, है भी शीसत मान ।।

कर्म की पवित्रता

कृत सब कर्म अच्छे हो जाय

651·अन्यों के साहाय्य से, मिलता केवल अर्थ ।
किन्तु कर्म की शुद्धि से, सब कुछ वांछित अर्थ ।।
652·यशकर तथैव पुण्यकर, इह पर जो है कर्म ।
नित मंत्री को चाहिए, करना वही सुकर्म ।।

653·जो चाहे उन्नति सदा, वह न करें सो काम ।
मिलने की संभावना, जिससे हो बदनाम ।।
654·आ पडने पर शोक भी, निर्मल विवेकशील ।
शोक मिटाने हैं नहीं, बनते कुकर्मशील ।।

655·जो है पछतावाकरी, कभी न वह करणीय ।
अगर भूल से रचित हो, कभी न फिर करणीय ।।
656·भूख मिटाने मातृ की, जो जन नहीं समर्थ ।
तब भी वह काम न करें, सदैव गर्हित अर्थ ।।

657·करके पापाचार भी, जो धन है संप्राप्त ।
उससे बढकर विज्ञ का, अभाव गुरुतापाप्त ।।
658·बुध से दूषित कार्य भी, करके हो फलवान ।
तो भी कृति के अंत में, होगा शोक महान ।।

659·पर-पीडन से प्राप्त धन, खुद दुखकर मिटे जाय ।
पुण्यलब्ध धन नष्ट हो, फिर भी खुद मिल जाय ।।

660·धन का अर्जन कपट से, तथैव पालन कार्य ।
कच्चे घट में जल यथा, भर देने का कार्य ।।

क्रिया में दृढता

कर्मशील को मनोदृढता जरूरी है

661·दिल की दृढता है वही, जो कृति में स्थिर भाव ।
सैन्य दुर्ग से चित्त में, नहि होता दृढ भाव ।।

662·निन्दित कृति को छोडना, अघ करना पड जाय ।
तो भी दृढता छोडना, नही यही बुध-राय ।।

663·दृढ़ता उस कृति में निहित, जो आखिर में व्यक्त ।
वही काम है दुखकरी, जो मध्यम में व्यक्त ।।

664· यह कृति यों करणीय है, यों कहना आसान ।
कथनी के अनुसार ही, करना नहि आसान ।।

665·कुशल कार्ययुत सचिव का, जो है दृढता-भाव ।
वह सब से महनीय के, रखता नृपयश भाव ।।

666·कार्यार्थी नित हैं करम, करने में दृढचित्त ।
इच्छित फल-अनुसार वे, होंगे सफलीचित्त ।।

667·धुरा-सदृश गुरू लोग हैं, रखते स्थिरता भाव ।
कारण दृढता श्रेय का, बृहत न आकृति भाव ।।

668·भीत न होकर धैर्य से, फल की इच्छायुक्त ।
आलस तजकर समय पर, कार्यकरण में युक्त ।।

669·अगर देह का क्लेश हो, फिर भी हो दृढचित्त ।
अंत भला ही समझकर सफल रहो कृतिचित्त ।।

670·नर से पूजित है वही, जो हो सुकर्मशील ।
विषय सभी में सर्वदा, औ होते दृढशील ।।

काम करने की पद्धति

सफलता के साथ काम करने की रीति

671 · यह कृति अनिवार्य है, यों निश्चित कर काम ।
आलस तज लो अन्यथा, हो दुख नहि आराम ।।

672 · जो करना है देर से, करना वही विलम्ब ।
जो नहि करना देर से, सो कर लो अविलम्ब ।।

673 · अवसर मिलता जब कभी, तब कर पूरा काम ।
नहि तो जो हो साध्यकृति, पूरा कर वह काम ।।

674 · कर्म अधूरा युद्ध में, क्या हुआ रणवीर ।
दोनों स्फुलिंग शेषसम, करें हानि औ चीर ।।

675 · द्रव्य काल कृति करण थल, जब होते अनुकूल ।
सोच समझकर तब करम कर नहि हो प्रतिकूल ।।

676 · यत्न विघ्न परिणाम ही, सम्यक सोचा जाय ।
फिर ही कार्यकलाप में लगन दिखायी जाय ।।

677 · धंधे का सच हाल औ, उद्योगी का हाल ।
खूब जानकर कर्म में, लगना मालामाल ।।

678 · परिचित गज से और गज, जैसा पकडा जाय ।
वैसे इककृति से अपर, कार्य-पूर्ति हो जाय ।।

679 · मित्र-मदद नहि मुख्य है, यह फिर देखा जाय ।
पहले रिपु के शत्रु को, वशी किया ही जाय ।।

680 · आश्रित जन को भयरहित, रहने नर कलहीन ।
दोस्ती करले मनुज से, ताकत से स्वधीन ।।

दूत व्यक्ति

एक नृप से दूसरे नृप के साथ दौत्य कर्मकरनेवाले का स्वभाव

681·दूत वही है जो रखें, बंधुनेह का भाव ।
कुलीनता औ भूप से, वांछित सुंशील भाव ।।

682·तीन शील हैं दूत के, ऋजुतासमेत ज्ञान ।
वाक्य कथन की निपुणता, और नेहप्रधान ।।

683·सूचक गुण हैं दूत के, निज नृप जय की युक्ति ।
कहना पर दरवार में नयविद-पटुता-उक्ति ।।

684·स्वाभाविक मति रूप औ, सखोज विद्या तीन ।
जिसमें हैं वह दूतकृति कर सकता शकहीन ।।

685·वही दूत है जो तजें, अनुपयुक्त पदजाल ।
नायक का हो हितकरी, कहें सुखद पदजाल ।।

686·समयोचित मतिमान औ, नीतिमान धृतिमान ।
वक्ता जो निर्भीक है, वह है दूत सुजान ।।

687·देश काल कर्तव्य का; विचार कर जो बात ।
करता है पटु खोज से, दूत वही है ज्ञात ।।

688·सदाचार उपकारिता, औ धृति से जो युक्त ।
दूत शब्द से जगत में, वह है सदा प्रयुक्त ।।

689·प्रमाद से अपशब्द भी, जो न कहें रिपु-बीच ।
योग्य दूत वह बोलता, और भूप के बीच ।।

690·शायद निज ही निधन हो, तब भी हो नहि भीत ।
औ नृपहितवादी बनें, वही दूत निर्णीत ।।

भूप से समुचित व्यवहार

राजा से मिलजुलकर जीने का तरीका

691·राजाश्रित नर भूप के, निकट-दूर नहि जाय ।
शैत्यनिवारण केलिये, शुचि में नहि घुस जाय ।।

692·राजाश्रित नर भूप की लषित चीज पर चाह ।
रखें न तो वे भूप से, धनविभव की राह ।।

693·निज पालन चाहे अगर, तो हो नृपरिसमुक्त ।
करना संभव भी नहीं, नृप को शक से मुक्त ।।

694·राजदृष्टि पड़ने समय, पर से रहस्य वचन ।
करो और तुम छोड़ दो, हास्य वचन की बान ।।

695·यदि नृप रहस्य बोलता, तो न सुनो तुम गौर ।
करो न सवाल नृप कहें, खुद तो सुन लो गौर ।।

696·समय-इशारा भूप के, जानों फिर घुसकर ।
बन कहीं मनचाह पर, उससे तुम शौकीन ।।

697·किन्हें पूछें नित भूप से, कर लें सार्थक बात ।
पूछें तो भी भूप से, न कहें निरर्थक बात ।।

698 भूप बंधु है ज्येष्ठ नहि, यों कहकर अनजान ।
कभी नहीं कर लें सजा, दें समुचित पद-मान ।।

699·नृप से पूजन समझकर, निरखन विवेकवान ।
नृप का अनिष्ट कार्य भी, न करें सचिव सुजान ।।

700·हम पुरोहित हैं भूप के, यों कह दर्पसमेत ।
करने का हक दुष्करम, होगा शोकसमेत ।।

इंगित बोध

संकेत से मनोगत भाव जानना

701·आशय जानें विन कहें, जो लख मुख का भाव ।
होगा वह नित जगत का, गहना महानुभाव ।।

702·जो मुख के संकेत से, आशय निःसंदेह ।
जाने वह सुरतुल्य हो, यदपि धरें नरदेह ।।

703·जानें मुख की चाल से, जो पर मन का भाव ।
अपने वश में कर उसे, देकर धनादिभाव ।।

704·कहे बिना संकेत से, जो जानें पर-भाव ।
वे परसम्र हैं रूप में, मति में नहि समभाव ।।

705·जो मुखादि संकेत से, ना जानें पर-भाव ।
उसकी आखें व्यर्थ है, यद्यपि धरें दृगभाव ।।

706·ज्यों दर्शाता हैं स्फटिक, वस्तु वर्ण के भेद ।
त्यों दर्शाता आस्य है, मनोभाव के भेद ।।

707·देष राग की सूचना, करता है मुख-रूप ।
दुनिया में धिषणासहित, और न आस्यसरूप ।।

708·इंगितविद के सामने, कहना हे बेकार ।
इंगितविद मुखभाव से जानें शोकाधार ।।

709·दिखलायेंगे दृग हमें, वैर राग का भाव ।
इंगितविद से भूप सब, जानें सदसद भाव ।।

710·जो दृग से हो जानता, पर के मन की राय ।
अन्य भावविद बोलने वही योग्य कहलाय ।।

सभास्वरूप

सभा की हालत जानना

711·सभालक्ष्य को जानकर, और समझ कथनीय ।
शब्दजालविद भीड में, बालें विचारणीय ।।

712·अर्थ शब्द के दोष तज, सदस्य की रुचि जान ।
प्रयोग कर औ शब्द का, शब्द-रीति भी जान ।।

713·सदस्य-रुचि जाने बिना, जो वक्ता बन जाय ।
वे हैं पटुवक्ता नहीं, अपढ कहाया जाय ।।

714·दर्शाओं पाण्डित्य निज, पण्डितगोष्ठीमध्य ।
रहों चूनसम मौन हो, अनपढ-गोष्ठीमध्य ।।

715·ज्ञानी भाषण पूर्व से, निजभाषण बुधमध्य ।
नहि दे रहना विनय से, उत्तम गुण नहि मध्य ।।

716·दुर्वच का उपयोग जो, करता है बुध-बीच ।
मुक्तिमार्ग से भ्रष्टसम, ज्ञात वही है नीच ।।

717·शब्द तत्व ओ खोज में, प्रवीण जन के पास ।
शास्त्र निपुण का ज्ञान ही, पाता खूब प्रकाश ।।

718·आगे बढते खेत में, पानीसींचसमान ।
अर्थविदों के सामने, बुधभाषण गरिमान ।।

719·सूक्ष्म कथन में चतुर जो, है प्राज्ञों के बीच ।
प्रमाद से भाषण न दें, वह मूर्खों के बीच ।।

720·गंदे आंगन में अमृत, बिखरे हुए समान ।
ज्ञानी भाषण मूर्ख के, बीच न विराजमान ।।

सभा कंपविहीनता

सभा में डरे बिना भाषण-रीति

721·शब्द रूप औ भीड की, गति-विधि-वेत्ता लोग ।
थक्कर भी करते नहीं, दुर्वच का उपयोग ।।

722·सबसे पटु बुध है वही, जो खुद विषय अधीत ।
स्पष्ट कहें बुध मध्य में, श्लाघ्य और निर्णीत ।।

723·प्राण छोडने युद में, उद्यत हैं बहु लोग ।
संसद में हैं भयरहित, भाषणपटु कम लोग ।।

724·सीखी बातें समिति में, स्पष्ट बतायी जाय ।
गुरू बुध से अविदित विषय, खुद ही सीखा जाय ।।

725·सीखे शाब्दिक ज्ञान फिर, सीखें आर्थिक बात ।
सभाकंप बिन सुगम ह्वे, समाधान की बात ।।

726·अधीर की तलवार से रण में क्या है लाभ ।
सभाकंपयुत मनुज को, पोथी से क्या लाभ ।।

727·हिजडों की तलवार ज्यों, होती है बेकार ।
सभा-भीरू का ज्ञान त्यों, बनता है बेकार ।।

728·सभात्रस्त यदि स्पष्ट जो, व्यक्त न करता भाव ।
तो उसकी विद्या सभी, बनती विफली भाव ।।

729·साक्षर जो यदि बोलने डरता पण्डित-बीच ।
तो वह अनपढ मनुज से समझा जाता नीच ।।

730·सभाकपयुत कथन में, पटु नहि जो धीमान ।
वे जीवित भी जगत में, हैं निर्जीवसमान ।।

राष्ट्र

राष्ट्र की बनावट

731·राष्ट्र वही है हो जहाँ, क्षयविहीन बहु धान ।
पटु जन मिलकर ठहरते, क्षयविहीन धनवान ।।

732·राष्ट्र वही है जो सदा, देता है अतिथान ।
औ सब से ही श्लाघ्य हो, नहि ह्वे विनाशवान ।।

733·राष्ट्र वही है जो धरें अन्य जनों का भार ।
माल उपज कर भूप को कर लें कर उपहार ।।

734·अमिट भूख नहि है जहाँ, और न अजस्र रोग ।
रिपु-हमला भी नहि वहाँ, करें "राष्ट्र" - उपयोग ।।

735·विभिन्न दल से युक्त नहि, जो नहि रिपुतायुक्त ।
खूनी नृप गणयुक्त नहि, वही राष्ट्र है उक्त ।।

736·अति उत्तम है राष्ट्र वह, जो रिपु से क्षयहीन ।
रिपु से क्षय हो अगर तो, भी नहि उपजीविहीन ।।

737·अंग राष्ट्र के उक्त हैं, निर्झर औ तालाब ।
सदृढ किला, गिरि शैल से, निर्गम सरिता-आप ।।

738·भूषणमय हैं राष्ट्र के, अरोगता धन-भाव ।
उपज वृद्धि सुख-जिंदगी, दुर्ग व शत्रु-बचाव ।।

739·सधान्य हो जो सहज से, श्रेष्ठ वही है राष्ट्र ।
सधान्य हो जो यत्न से, श्रेष्ठ नहीं वह राष्ट्र ।।

740·प्रजा-भूप के बीच में अगर नहीं सौजन्य ।
उक्तशीलयुत राष्ट्र तो, कभी नहीं है धन्य ।।

किला

देश की सुरक्षा

741· युयुत्सु भूपों के लिए, मददगार है दुर्ग ।
शरणार्थी जन के लिए, पालनघर है दुर्ग ।।

742·जो जल औ मरुभूमि से, आवृत हो वह दुर्ग ।
औ जिसमें गिरि· अधिक हो, छाहदार वनदुर्ग ।।

743·ग्रंथकार की राय है गढ़ के गुण हैं चार ।
चौडा ऊँचा दृढ तथा, रिपु को दुर्गाकार ।।

744·वही दुर्ग है जो रखें, रक्ष्य जगह अविशाल ।
शेष जगह विस्तृतमयी, निरुत्साह रिपु-ह्वल ।।

745·वही किला है शत्रु से, गम्य न मालामाल ।
जो हो बसने के लिए, उचित ससुख चिरकाल ।।

746·माल सभी से युक्त हो, जब हो शत्रु-अपाय ।
तब जो पालित सैन्य से, वही दुर्ग कहलाय ।।

747·हमला कर या युद्ध कर, अथवा कर छलछात ।
वशीभूत जो थल नहीं, वही दुर्ग है ज्ञात ।।

748·हमला होते समय भी, जहाँ नहीं कर भाग ।
रिपुहर लडता सैन्य हो, वह गढ का विभु भाग ।।

749·अन्दर रह रिपु सैन्य पर, भट पाते हैं जीत ।
ऐसी जयकर भूमि ही गढपद से निर्णीत ।।

750·पूर्व कथित गुणयुक्त भी, तब हो गढ बेकार ।
जब रणपटु करते नहीं, सैनिक कारोबार ।।

धनार्जन की रीति

पैसा कमाने का तरीका

751·अनुपयुक्त को पटु बना, देता है धन-माल ।
ऐसे उत्तम वित्त से, बडा और न हि माल ।।

752·आदर देते हैं नहीं, निर्धन को सब लोग ।
गौरव देते हैं सदा, अमीर को सब लोग ।।

753·वित्त दीप बनता हुआ, बुझे बिना द्युतिमान ।
स्वाश्रित-विरोध तमस का, नाशक है गतिमान ।।

754·उचित नीति से वित्त जो, अर्जित है निर्दोष ।।
वह धन दर्शक धर्म का, देता है संतोष ।।

755·प्यार-दया से रहित हो, अर्जित जो धनमात्र ।
वह धन सुखद न खेदकर, निश्चित वर्जितमात्र ।।

756·जो धन खुद ही लब्ध हो, औ कर से भी लब्ध ।
रिपु से प्रदत्त धन सभी, वे ही नृप को लब्ध ।।

757·जो हो करुणा दीन पर, वह करुणा सुतरूप ।
होकर वैभव-धाय से, पालित हो दृढरूप ।।

758·ज्यों नर गिरि चढ देखता, है गज रण बिनु भीति ।
त्यों नर रख धन हाथ में, कृति करता बिनु भीति ।।

759·वित्त कमाना चाहिए, शत्रु गर्वहर अस्त्र ।
धनरूपी तलवारसम, तेज और नहि अस्त्र ।।

760·काम-धरम दोनों उसे, मिलते हैं आसान ।
जो करता अर्जित सही, विधि से वित्त महान ।।

फौज की महिमा

सेना से होनेवाली भलाई के बारे में कहना

761·भूप धनों में सैन्य वह, सबसे विदित महान ।
अंग सभी से सहित हो, जो जयकर धृतिमान ।।

762·परंपरागत सैन्य ही, क्षति से कभी न भीत ।
रिपु के हमले में चतुर, घावों से नहि भीत ।।

763·अहि-रिपू चूहे सिंधुसम, गरजें क्या ही लाभ ।
सबल सैन्य के सामने, दुर्बल को नहि लाभ ।।

764·सैन्य वही है जो कभी, पीछे हटा न जाय ।
सहज वीरतायुक्त हो, छल से त्रस्त न जाय ।।

765·आकर यम ही रण करें, तो भी मिल इक साथ ।
जो है करता सामना, वही सैन्य निष्णात ।।

766·सदाचार और वीरता, मान तथा विश्वास ।
सैन्य-शील है चार ये, इनसे बल विश्वास ।।

767·व्यूह बनाकर जो करें, रिपु-रोध कर उपाय ।
और चढें रिपु-मारने वही सैन्य कहलाय ।।

768·शत्रुमार की सहृयता, रणपटुता का भाव ।
यदि न रहें तो भी चमू, रखें व्यूह का भाव ।।

769·लघु होना परिमाण में, दैन्य-घृणा के शील ।
ये नहि जिस में सैन्य वह, होगा नित जयशील ।।

770·यद्यपि रख ले नित चमू, वीरों को रणधीर ।
तो भी सेनापति रहित, वह हो चपल-अधीर ।।

फौज की बलिष्ठता

सैनिको की उत्तम वीरता

771·रिपुओं मेरे अधिप से लडकर नहि मर जाय ।
शिला सदृश बहु मृत बने, वह भी समझा जाय ।।

772· शर शश पर लग जाय यदि, तो भी लक्ष्य हि मोघ ।
शर गज पर नहि विद्ध यदि, तो भी लक्ष्य अमोघ ।।

773·रिपु को रण में जीतना, वीरकर्म कहलाय ।
वीर-कर्म की श्रेष्ठता, दुख में शत्रु-सहाय ।।

774·कर-शर गज पर फेंककर, और खोजकर बाण ।
निज उरगत शर प्राप्तकर, खुश होगा शरवान ।।

775·रिस से रिपु को देखते, दृग लख रिपू की मार ।
निमेष कर लें तो विदित, वही वीर की हार ।।

776·जितने दिन घायल नहीं, उतने दिन हैं व्यर्थ ।
जिस दिन घायल वीर हो, वह दिन कैसा व्यर्थ ।।

777·कीर्ति कमाने के लिए, सैनिक तजते प्राण ।
धरते भी हैं जो कडा, वह है शोभवान ।।

778·प्राण छोडने युद्ध में, दत्तचित्त रण-धीर ।
क्रुद्ध भूप रोकें अगर, तो भी लेंगे तीर ।।

779·प्राणत्यागी शपथ के, पहले जो मर जाय ।
शपथ-भंग का दण्ड तो, उसे दिया नहि जाय ।।

780· अगर मरण से भूप दृग, आँसू से भर जाय ।
तो ऐसे ही मरण का, वरण श्रेष्ठ समझाय ।।

781·अर्जित करने योग्य नहि, दोस्ती सम औ माल ।
रिपु से पालक मित्रता, सर्वोपरि है माल ।।

782·बढती है बंधु-मित्रता, पूरण चाँद-समान ।
अपढ·सख्य है उतरता, क्षयगत चाँद-समान ।।

783·सीख सीखकर ग्रंथ के विषय सुखद बन जाय ।
सुशील की मैत्री सदा, सुखदायक बन जाय ।।

784·हास्य-मोद मिलने सदा, करना मात्र न सख्य ।
देने भी सलाह सतत, दुख में करना सख्य ।।

785·मैत्री करने के लिए, न जरूरी सहवास ।
मैत्री होने के लिए, ऐक्य भाव का वास ।।

786·विकसित मुख ही के लिए, नहि हो मैत्री भाव ।
विकसित मन-मुख के लिए, होगा मैत्रीभाव ।।

787·हटा मित्र को कुपथ से, सत्पथ में ले जाय ।
दुख में दुखना साथ ही, मैत्री वह कहलाय ।।

788·हटे वसन को कर यथा, खुद है लेता थाम ।
त्यों दुख मे करना मदद, सही यार का काम ।।

789·एकरूपता हो सदा, रीति सभी से त्राण ।
भर सक करना मदद, दोस्ती की पहचान ।।

790·मैत्री-महत्व तब घटें, जब घोषित हो जाय ।
ये ईदृश मेरेलिए, इनका हूँ हि सहाय ।।

दोस्ती की जाँच

मित्रों की दोस्ती पहचानना

791·सुगम न दोस्ती तोडना, हित बनने के बाद ।
सोचे बिनू मैत्रीकरण, दुखकर है बुध-वाद ।।

792·बिन जाँचे कृत मित्रता, लगातार बहुबार ।
मरणहेतुमय शोक का, स्वयं बनें आधार ।।

793·बंधुशीलता दोष-गुण, कुल सब की कर जाँच ।
फिर ही करनी चाहिए, दोस्ती सार्थक साँच ।।

794·पाप भीरू हो जो तथा, कुलीन हो गुणवान ।
उसकी दोस्ती कीजिए, देकर वित्त महान ।।

795·कटु वच कहकर या रूला, समझावें व्योहार ।
ऐसे पटु को जाँचकर, दोस्ती कर अविकार ।।

796·एक रीति से खेद भी, लाभयुक्त बन जाय ।
दुख में तो वह भीत का, माप-दण्ड कहलाय ।।

797·अविवेकी की मित्रता, प्रमाद से हो जाय ।
अहित समझ तजना उसे, लाभ बताया जाय ।।

798·ऐसी कृति मी कीजिये, जिसमें नहि उत्साह ।
ऐसा दोस्त न चाहिए, दुख में तज लें राह ।।

799·दुख में जिसकी मित्रता, होती है बेकार ।
मृत्युकाल भी स्मृति वही, देगी शोक अपार ।।

800·दोषहीन गुणवान की, दोस्ती कर ली जाय ।
धन दें भी गुणहीन की, दोस्ती तज ली जाय ।

पुराणी मित्रता

पुराणे दोस्तों के दोषों को सहना

801·चिर परिचित नर से रचित, जो कुछ भी हो काम ।
उसे न रोके मानना, चिर मैत्री का नाम ।।

802·चिर मैत्री का अंग है, हक से करना कार्य।
फरज समझ कर शिष्ट को, रहे सदा स्वीकार्य।।

803·यदि हक से कृत मित्रकृति, निजकृतसम बन जाय ।
तो नहि स्वीकृति मित्रता, लाभरहित हो जाय ।।

804·हक से ही पूछे बिना, करके इच्छित कार्य ।
फिर करना तारीफ़ भी, शिष्टों से स्वीकार्य ।।

805·निन्दित कृति यदि मित्र से, पूरी भी हो जाय ।
अबोधहम से कृति हुई, ऐसा समझा जाय ।।

806·चिर दृढ परिचित यार से, अगर हुआ परिताप ।
तो भी मर्यादा उसे, तजते नहि हैं आप ।।

807·सनेहपरिचित से अगर, दुख उत्थित हो जाय ।
तब भी साथी की लगन, कभी नहीं घट जाय ।।

808·मित्रं-दोस जो नहि सुनें, यदपि बताया जाय ।
वह दिन शुभ है मित्र को, दोस किया जब जाय ।।

809·बहुत पुराणी मित्रता, रखते हैं जो लोग ।
दुनिया उनको चाहती, देगी गौरव-योग ।।

810·दोष करें चिर मित्र यदि, तब भी न तजें यार ।
वैरी भी उस यार पर, दिखलावे खुद प्यार ।।

बुरी मित्रता

बुरे गुण वालों की दोस्ती का स्वभाव

811·नेही-समान मित्रता, करते हैं खल लोग ।
उनकी दोस्ती नहि बढे, घटने में सुख भोग ।।

812·स्वार्थी बनकर जो करें, मित्रामित्र-विचार ।
उसकी दोस्ती लब्ध हो, या न उभय बेकार ।।

813·तीनों समगुण वान हैं, स्वार्थी साथी लोग ।
धनलोलुप गणिका तथा, वंचक तस्कर लोग ।।

814·रण में पति को अधोगिरा, भागा वाजिसमान ।
मददहीन हित से अलग, रहना श्रेयोमान ।।

815·नीच-मित्रता विपद में अनुपयुक्त ठहराय ।
ऐसी दोस्ती ना मिलें वह हित समझा जाय ।।

816·बुद्धिहीन की मित्रता, गर्हित समझी जाय ।
उससे बुध की शत्रुता, हितकर समझी जाय ।।

817·हास्य रसिक की मित्रता, देती है आराम ।
उससे बढकर दस गुना, रिपु से हो आराम ।।

818·साध्य-कार्य को मित्र जो, करता है दुस्साध्य ।
उसकी दोस्ती बिनु कहे, तजना हो आराध्य ।।

819·जो नहि करता है करम, कथनी के अनुसार ।
उसकी दोस्ती स्वप्न में, भी हो क्लेशाधार ।।

820·स्तुति करके जो गेह में, दूषित करें विगेह ।
उसकी दोस्ती छोड दें, औ न दिखावें नेह ।।

कपट-मित्रता

अनमेल असमान मित्रता:

821·अन्दर से नहि मित्रता पर हो दोस्ती बाह्य ।
निहाउसम पाकर समय, वह मारक हो काट्य ।।

822·नाता बिनु जो बंधुसम, बनता है अभिनीत ।
असकी दोस्ती स्थिर नही, स्त्रीदिलसम निर्णीत ।।

823·पढने पर भी विविध औ, अच्छे ग्रंथ महान ।
रिपु तो बनते नहि सखी, यद्यपि हो मतिमान ।।

824·बहि रह हँसमुख हृदय में, जो सोचें कुविचार ।
उस कपटी को देखकर, डरिये अनेक बार ।।

825·ऐक्य भावयुत जो नही, सुनकर उसकी बात ।
लग जाना है कार्य में, नहीं हर्ष की बात ।।

826·सखासदृश हितकर वचन, यदि रिपुकहें ललाम ।
तो तुर वच वे व्यर्थ ही, होते प्रकट तमाम ।।

827·जैसे दुख की सूचना, करता विनीत चाप ।
वैसे रिपु के विजयपद्, सूचित करते ताप ।।

828·वैरी के कर युग्म में निलीन है हथियार ।।
रिपु के दृग जल-धार में निहील वधक हथियार ।।

829·ज्यों रिपु मन में ईर्षा, रख प्रकट करें बहि नेह ।
त्यो मन में मैत्री न रख, प्रकट करो बहि नेह ।।

830·दोस्ती करके शत्रु यदि, बनता मित्रसमान ।
तो मुख से ही मित्रता, कर फिर उसे न मान ।।

मूर्खता

831·लाभकरी कृति छोडना, मौढ्य बताया जाय ।
करना भी कृति हानिकर, मौढ्य कहाया जाय ।।

832·दूषित चरित्र शास्त्र में जो भी सम्यक उक्त ।
उनपर रखना चाह ही परम मूढता उक्त ।।

833·हित निस्पृहता, क्रूरता, कुकर्म में ना लाज ।
सोच समझ की रहितता, विमूढ के हैं काज ।।

834·ऐसा विमूढ और नहिं, जो हो शास्त्राधीत ।
पटु पर के उपदेश में, नहि कर्मठ, अविनीत ।।

835·जो अध देता जीव को, बाधा सातों जन्म ।
वह अधकर दुख भोगने चतुर मूढ इक जन्म ।।

836·कर्मतत्व समझे बिना, मूढ करें यदि काम ।
तो वह धारीहथकडी, या होगा ना काम ।।

837·मूढ-हाथ में वित्त हो, तो भोगें औ लोग ।
किन्तु भूख से तडपते, होंगे घर के लोग ।।

838·मदिरा पीकर मस्त नर, पाता है जो हाल ।
धन पाकर भी मूढ जन, पाता है वह हाल ।।

839·विमूढ जन का विरह तो, दुखद नहीं ठहराय ।
इससे, दोस्ती मूढ की, सुखद सदा बन जाय ।।

840·बुध गोष्ठी में मूढ का घुसना नहि सुख देय ।
धोये बिनु पद सेज पर, रखना नहि सुख देय ।।

841·सन्मति का अभाव अधम अभाव ही ठहराय ।
ना हीं अन्याधाव को अभाव समझा जाय ।।

842·मतिविहीन यदि प्रीति से, देता हैं धन-माल ।
धनहर्ता का पुण्य वह, दाता का नहि चल ।।

843·जितना दुख है भोगता, विमूढ अपने आप ।
उसके रिपू को सुकर नहि देना उतना ताप ।।

844·नादानी उसको कहें जिससे अपने आप ।
हम ही विवेकयुक्त है, यों ह्वे भ्रम की छाप ।।

845·लघुमति यदि अनधीत को, कहता खूब अधीत ।
तो उसके अधीत विषय में, पर को शक निर्णीत ।।

846·निजी दोष को जानकर, बिना मिटायें मंद ।
गुह्य अंग को वसन सें, छादित करता बंध ।।

847·गुप्त विषय को मंदमति, बाहर करता व्यक्त ।
होगा अपने आप ही महान पीडासक्त ।।

848·सुकर्म पर से उक्त भी, नहि कर खुद अनजान ।
जडमति को आमरण ह्वे, बीमारीमय प्राण ।।

849·उपदेशक नासमझ को, रहें न खुद मतिमान ।
जडमति हठ से आप ही, दीख पडें मतिमान ।।

850·जिसकी सत्ता जग कहें, उसे न जो स्वीकार ।
करें उसे ही मान ले नरमय प्रेताकार ।।

भेद-बुद्धि

851·आपस में मिलने नहीं, देता है जो भाव ।
दुर्गुण वर्ध्दक रोग वह, है ही विभेद-भाव ।।

852·यदि कोई रहने अलग, करें अहित का काम ।
तो बदले में अहित नहि, करें भला वह काम ।।

853·भेद भाव सब से बडा, दुखद रोग निर्णीत ।
दूर करें, उस रोग को, तो चिर यश निर्णीत ।।

854· भेद बुद्धि सब से बडी, बीमारी कहलाय ।
भेद-बुद्धि से रहित को, होगा हर्ष निकाय ।।

855·भेद-भाव का सामना, कर जो हो प्रतिकूल ।
उस पर जय की बात है, निश्चित ही निर्मूल ।।

856·भेद-भाव को जो सही, समझ रखें मति-भेद ।
जीवन में उपलब्ध ह्वे, उसे दोस्त औ खेद ।।

857·भेद-बुद्धि से लोग जो, बनते दुर्मति युक्त ।
वे नहि जानें नीति को, जयद तत्व से युक्त ।।

858· भेद-बुद्धि जो छोडते, वे पाते सौभाग्य ।
भेद-बुद्धियुत जो हुए, वे पाते दुर्भाग्य ।।

859·जब मिलता है श्रेय ही, तब न भेद की याद ।
जब मिलता है अशिव खुद, तभी भेद की याद ।।

860·भेद-बुद्धि से मनुज को मिलते हैं सब खेद ।
मैत्री से नय-मार्ग में धन मिलते बिनु खेद ।।

दुश्मनी का महत्व

दुश्मनी के महत्व से होनेवाली बुराइयाँ

861·अपने से जो है बली, उसका रखो न वैर ।
अपने से जो दुबल है, चाहो उसका वैर ।।

862·प्रेमहीन असहाय जो, अगर न रखता शक्ति ।
कुंठित कर सकता नहीं, वह तो अरि की शक्ति ।।

863·भीरु कृपण बेमेल औ, नेहहीन अनजान ।
ये सब अरि को जीतकर, गाते क्या जयगान ।।

864·इन्द्रिय-विजयी जो नहीं, यदि कोपी रह जाय ।
उसे जीतना कब किसे सरल न तो बन जाय ।।

865·वह रिपु को नहि जीतना, जो नहि जानें नीति ।
अहितकरी दुश्शील हो, औ न रखें अघ-भीति ।।

866·रहता है जो कोपयुत, औ अतिकामसमेत ।
उसकी रिपुता मोल लो, अभिलाषा समवेत ।।

867·काम शुरू कर फिर अगर, जो करता विपरीत ।
देकर भी कुछ शत्रुता, उसकी हो सुगृहीत ।।

868·है गुणविहीन और जो, दोषों से संपन्न ।
तो वह बन असहाय हो, रिपु से मरणासन्न ।।

869·नीतिशास्त्रविद जो न औ, यदि रिपु हो भयभीत ।
तो सुख मिलता व्यक्ति को, पा उस रिपु की जीत ।।

870·अनपढ की है शत्रुता करना सरल हि काम ।
कर सकता नहि जो उसे, कब वह पावें नाम ।।

रिपु बल को जानना
रिपु की स्थिति को पहचानना

871·रिपुता हितकर कर्म नहि, ऐसा कार्यकलाप ।
कोई करना, खेल से, ना चाहें भी ख्वाब ।।

872·चाप-सीर-धर कृषक की, रिपुता कर स्वीकार ।
पर वच हलधर कृषक की, रिपुता कर इनकार ।।

873·बहुरिपुता का मोल जो, लेता है बिनु मेल ।
पागल से बढ रिक्त से वह खाता है मेल ।।

874·मित्र बनाता शत्रु को, जो भी हो गुणवान ।
उसकी महिमा से जगत, ठहरा है गतिमान ।।

875·एकाकी असहाय नर, यदि रखता दो वैर ।
तो तुरंत इक शत्रु को, मित्र बनाना खैर ।।

876·रिपु को जाने या नहि, जब होता दुख-काल ।
तब रिपु का संयोग नहि, विरह न मध्यम चाल ।।

877·नये मित्र से शोक निज, प्रकट न करना ठीक ।
रिपु से निज बलहीनता, प्रकट न करना ठीक ।।

878·निज बल वर्धक कार्यविद, खुद जो करें बचाव ।
रिपुजन उसका आप तो, खोयेगा हि प्रताप ।।

879·पोधा कांटेदार यदि, हो तो झट कर छेद ।
वर्धित कांटेदार तोछेदक को कर खेद ।।

880·शत्रुगर्व का जो नहिं करता है विध्वंस ।
तो ही रिप के फैंकते पाता इस विध्वंस ।।

आन्तरिक दुश्मनी

बाहरी दुश्मनी का मूल आन्तरिक दुश्मनी

881·रोगकरी ज्यों छाँह-जल, देते हैं दुख दर्द ।
त्यो बंधव के गुण बुरे, पैदा करते दर्द ।।

882·असिसम रिपु से बाहरी, कभी नहीं हो भीत ।
गूढशत्रु से बंधुसम, हो जाओ भयभीत ।।

883·डरकर रिपु से भीतरी, कर लो अपना त्राण ।
ना तो सछेद पात्रसम, रिपु हर लेगा प्राण ।।

884·जो दृढ रिपुता भीतरी, रखता है, दिन रात ।
उसकी रिपुता आप ही देगी विरहोत्पात ।।

885·यदि बंधव की शत्रुता, भीतर ही हो जाय ।
वह हत्यासम दोष का, कारण तो बन जाय ।।

886·निज साथी की शत्रुता, यदि पैदा हो जाय ।
तो फिर बचना मरण से, दुर्लभ समझा जाय ।।

887·ताम्र खण्ड सम गूढरिपु, मेल दिखाते खूब ।
पर अन्दर से मेल बिनु, रहते उलटे खूब ।।

888·असि के घर्षण से यथा, प्रनष्ट लोहा-खंड ।
तथा गूढरिपु लोग भी, होंगे क्षीण प्रचंड ।।

889·तिलकण समान यद्यपि लघु, होता निगूढ वैर ।
तो भी देगा नहि बढी, कुलगत गौरव खैर ।।

890·निवाससम इक गेह में, विकट साँप के साथ ।
जीवन-यापन दुखद है, गूढशत्रु के साथ ।।

महान लोगों के प्रति अपराध न करना

बडों की नावहेलना

891·कार्यकुशल की चतुरता, विदित नही की जाय ।
वही त्राण-उपकरण में, महान समझा जाय ।।

892·यदि लोगों के प्रति बडा, किया जाय अपमान ।
दुख देगा ब्योहार वह, तो अजस्र तू जान ।।

893·यदि चाहें खुद बिगडना, तो बिनु सुन कर दोष ।
यदि चाहें रिपु से निधन, पटु के प्रति कर दोष ।।

894·मारक यम को हाथ से, हो आह्वानसमान ।
पटु के प्रति असमर्थ का, अनहित चलायमान ।।

895·प्रबल भूप के कोप का, जो बनता है पात्र ।
नृप से बचकर वह कहीं जी सकता न सगात्र ।।

896·जलने पर भी आग से, बच सकते हैं प्राण ।
पटु के प्रति कृत अहित से, शक्य न धरना प्राण ।।

897·महामहिम यदि तापसी, करें भूप पर कोप ।
तो नृप का साम्राज्य सब ह्वे जायेगा लोप ।।

898·गिरिसम सज्जन-चित्त में, अनहित सोचा जाय ।
तो भी जग में दृढ धनी, सवंश मर मिट जाय ।।

899·लक्ष्यपुरुष यदि तापसी, हो वें कोपसमेत ।
इन्द्र भूप तो भ्रष्टपद, बिगडें राजसमेत ।।

900·तपोबली सज्जन अगर, हो रिस से भर पूर ।
तो वह सहाय सहित भी ह्वे बचने से दर ।।

पत्नी का अनुवर्तन

स्त्री वच सुनकर काम करने से होनेवाले अहित:

901·स्त्री-वच-कारी श्रेष्ठ नहि, भजता धार्मिक लाभ ।
घृणित मोह से नापि वह, पाता आर्थिक लाभ ।।

902·निज पौरुष चाहे बिना, जो चाहे स्त्री-भाव ।
उसका धन बनकर शरम, देगा लज्जा-भाव ।।

903·जिसका स्वभाव सर्वदा, होता स्त्री से भीत ।
गुरु बिद्य उसका आचरण, लज्जास्पद निर्णीत ।।

904·स्त्री से जो भय भीत है, आमुष्मिक सुखभोग ।
वह नहि पाता, नापि औ, कृति-पटुता स्तुति भोग ।।

905·जो पत्नी से सर्वदा, रहता है भयभीत ।
सज्जन के हित कर्म में वही रहेगा भीत ।।

906·स्त्रीस्कंधों से भीत जो, सुरसम समय बिताय ।
सचमुच वह तो श्रेय का, लायक नहि बन जाय ।।

907·स्त्रीवचकारी पुरुष का, पौरुष है नहि मान्य ।
लज्जित स्त्री का भाव तो, सचमुच ही संमान्य ।।

908·जो करता है आचरण, स्त्री के मनोनुकूल ।
वह न करेगा धर्म औ, हित नाप्रियानुकूल ।।

909·जो स्त्री के आदेश से करता है निज कर्म ।
आर्थिक धार्मिक सुखकरी नहि करता वह कर्म ।।

910·विमर्शकारी औ धनी होते हैं जो लोग ।
स्त्रीगत माया-जाल में नहि फँसते वे लोग ।।

वेश्या
एक सीमा में जकडी नारियाँ

911·मनरति बिनुधन के लिए, जो दर्शाती प्यार ।
उस नारी के मधुर वच, देंगे शोक अपार ।।

912·गणिका कहती मधुर वच, धन के ही अनुसार ।
सोचो उसकी चाल पर, उस पर करो न प्यार ।।

913·नारी धनेप्सित ज्यों मृषा कहती अनुनयशील ।
मृतानुवर्तन तमस में, त्यों है असभ्यशील ।।

914·धर्मी विवेकसहित ही, होते हैं जो लोग ।
वेश्या स्त्री का अचिर सुख, चाहते न वे लोग ।।

915·ज्ञान किताबी प्राप्तकर, जो नर हैं मतिमान ।
नहि वेश्या के अचिर सुख, चाहें वे इनसान ।।

916·यशोभिलाषी सभ्य जन, नाच गान से मुग्ध ।
कारक गणिका-दृष्टि पर, नहि होते हैं मुग्ध।।

917·जो रहता है सर्वदा, चंचल दृढताहीन ।
धनेच्छ , गणिका-स्कंध पर, रहता है वह लीन ।।

918·कपटी गणिका की सुरति, मोहनवार समान ।
लगती है नासमझ को, बगैर अनुसंधान ।।

919·दोष बोध से अपरिचित, होते निकृष्ट लोग ।
गणिका भुजमय नरक का, करते हैं वे भोग ।।

920·जो लक्ष्मी से त्यकत हैं, उनके नातेदार ।
ये तीनों हैं, कंचनी, द्यूत, सुरा मतिहार ।।

सुरापान न करता

सुरा-पान न करने की विशेषता:

921·मदिरा-सेवी मनुज से, रिपु जन भी नहि भीत ।
और सुयश उसको नहीं, मिलता यों निर्णीत ।।

922· सुरा-पान मत कीजिये, शिष्टो से संमान ।
जो पीना चाहें नहीं, वे कर लें मधु-पान ।।

923·मद्यप सुत को देखकर, माता को हो खेद ।
औ मद्यप को, देखकर शिष्टों को हो खेद ।।

924·सुरा-पान के दोष से, दोषी जो ठहराय ।
लज्जा रूपी सुंदरी, उससे भाग हि जाय ।।

925·धन नाशक निज देह की सुध-नाशक मधुपान ।
सदाचार से अपरिचित, है तो मौढ्य-समान ।।

926·सुप्त मनुज मृत मनुज से, नहि होता है भिन्न ।
नित मद्यप है विषण्सम, इस में मत नहि भिन्न ।।

927·छिप-छिप जो पीकर सुरा, खोता ही है ज्ञान ।
औरों बिच वह हास्य का, विषय बनें बिनु मान ।।

928·"मधुपीकर मैं अज्ञ हूँ" यों नहि बोला जाय ।
नशा-हाल में चित्त का, दोष प्रकट हो जाय ।।

929·समझाकर मधुमस्त को, सुधारना नहि साध्य ।
नीरमग्न को दीप से करना खोज न साध्य·।।

930मद्यप मधु चखि बिनु पिये, औ मद्यप का हाल ।
लखता तो वह सोच लें, विवशी मद्यप-हाल ।।

जुआ - द्यूत खेल की बुराइयाँ

931·जुआ खेलना इष्ट नहि, यदपि विदित पण-जीत ।
झष-निगला काँटा यथा, पण-धन कर अनरीत ।।

932·इक रूपया है फायदा, सौ से बढ नुकसान ।
ऐसे पण में निरत का, जीवन है सुनसान ।।

933·पणपटुता यदि द्यूत में, करता अर्जित-माल ।
तो वह उससे अलग हो, बनता रिपु का माल ।।

934·बहुत अहितकर कीर्ति का नाशक द्यूतसमान ।
अभावदयक जगत में, कोई और न आन ।।

935·जो तजता नहि द्यूतघर, पणापटुता औ द्यूत ।
यदपि रहें वह मालयुत, तो भी रंकीभूत ।।

936·पणमय दारिद-नारि से, ग्रस्त रहें जो लोग ।
इह नहि खाते पेट भर, औ वे भोगें शोक ।।

937 पाण-घर में जिसका समय, अगर बीत हो जाय ।
उसका धन औं शील तो क्षय होकर मिट जाय ।

938·माल वित्त का नाशकर, असत्य भाषणमूल ।
करुणावर्जित हो जुआ, शोक भोग का मूल ।।

939·कैतव की लीला अगर, अपनायी ही जाय ।
विद्या धन यश वसन औं अन्न दूर हो जाय ।।

940·नष्टवित्त नर द्यूत में, फिर हो वित्तासक्त ।
दुखपीडित भी नर यथा रहता प्राणासक्त ।।

दवा - नीरोग-जीवन की दवा

941·श्रम-भोजन की न्यूनता, यदि या अति हो जाय ।
वात-पित्त-कफ़ से तभी, रूज पैदा हो जाय ।।

942·जीर्ण हुआ यदि अन्न तो, फिर खाना है ठीक ।
तन को दवा न चाहिए, इसमें नहीं अलीक ।।

943·हजम हुआ तो अशन कर, सीमित भोजन जान ।
हैके चिर जीवन के लिए, यही तरीका जान ।।

944·खादित भोजन हजम हो, फिर तन के अनुसार ।
लगने पर तो भूख ही, लेना है आहार ।।

945·दोषरहित भोजन करें, यदि मित तृप्तिसमेत ।
तो देही की देह नहि, होगी रोगसमेत ।।

946·अल्पाशी को सुख यथा, मिलता है चिरकाल ।
अत्याशी में रूज तथा, रहता है चिरकाल ।।

947·भूख-हाल जाने बिना, औ बिनु पथ्य विचार ।
अति भोजन ही यदि करें, तो हो रोग अपार ।।

948· डाक्टर जाने रोगीथिति तथैव रोग-निदान ।
रोग हरण फिर जानकर, कर लें भेषज-पान ।।

949·डाक्टर रोगी-हाल औ ज्वरादि सारा काज ।
औषध-वेला सोच औ सम्यक करें इलाज ।।

950·वैद्य-शास्त्र में विहित हैं केवल विभाग चार ।
रूग्नसहायक, वैद्य औ बीमारी, बीमार ।।

951·कुलीन लज्जावान है सदाचार से युक्त ।
शेष सहज ही शरम औ चरित्र से व अयुक्त ।।

952·कुलीन रखते हैं सदा, ये तीनों ही शील ।
सदाचार औ सत्यता, तथैव लज्जा शील ।।

953·सच्चे कुलीन के सहज, गुण होते हैं चार ।
अविदूषण औ सुमुखता, मधुवच, दानाचार ।।।

954· कुलीन कभी न नीच का, करता कार्य-कलाप ।
यद्यपि अपने पास हो, कोटि कोटि धनलाभ ।।

955·ऊँचे कुल यमें अवतरित, यदपि रंक बन जाय ।
तो भी परोपकार-गुण, उससे तजा न जाय ।।

956·कुलगौरव का आगर जो, करता है परिपाल ।
होने पर भी रंक वह, नहि करता छल-जाल ।।

957·कुलीन का लघु दोष ज्यों सब को है मालूम ।
कलंक नभस्थ चाँद का सब को त्यों मालूम ।।

958·कुलीन सुशील जो नहीं, रखता ही है नेह ।
उसके कुलत्व में सहज, हो पर को संदेह ।।

959·उगते अंकुर देखकर जमीन गुण ज्यों ज्ञात ।
त्यों भीषण से वंशगुण, खुद है होता ज्ञात ।।

960·यदि पाना चाहें भला, तो बन लज्जाशील ।
कुलीनता चाहे अगर, तो बन विनम्रशील ।।

अपने कुलगौरव की अवनति हो जाय तो प्राण का परित्याग करना

961·जीने कुल का नाशकर करना नहि है काम ।
आवश्यक औ श्रेष्ठ ही क्यों नहि हो वह काम ।।

962·जो नर है नित चाहता कीर्ति तथा संमान ।
वह कुल का अनुचित करम, नहि करता तू जान ।।

963·विनम्र रहना चाहिए, धनी-दशा पर्यन्त ।
उन्नत रहना चाहिए, रिक्त-दशा पर्यन्त ।।

964·केशपाश ज्यो शीश से, गिरकर बनते व्यर्थ ।
कुलीन पद-से भ्रष्ट हो, बनते है त्यों व्यर्थ ।।

965·गिरिसम उन्नत लोग यदि, करते कृति लघु नीच ।
तो ही तुरंत लोग वे, कहलाते हैं नीच ।।

966· निज निंदक के साथ जो फिरते हैं दिन रात ।
स्वर्ग-कीर्ति उनको नहीं, कहाँ पुण्य की बात ।।

967·निज निंदक का हो वशी, नित धरते है प्राण ।
यही भला है रिक्त हो, तज लेना है प्राण ।।

968·गौरव का जब भंग हो, तब जीवन-निर्वाह ।
ना तो तन-धारण दवा, नापि मुक्ति की राह ।।

969·रोम पतन से चमर मृग ज्यों तजता है प्राण ।
कुलीन गौरव के लिए, त्यों तजते है प्राण ।।

970·मान-हानि की भीति से, मानी तजते प्राण ।
जग में करने लोग सब, उसके जय का गान ।।

महत्व - सदगुणवाले बडे लोगों का स्वभावः

971·महत्वकर है मनुज को, कृति करना सोत्साह ।
कलंकक्कर है औ उसे, जीना बिनु उत्साह ।।

972·मानव सब है जन्म से, रहते एक समान ।
वे गुण-कृति के भेद से होते हैं असमान ।।

973·ऊँचे पद-आसीन भी, नहि हो नीच महान ।
नीचे पद-आसीन भी, महान नहि लघुमान ।।

974·खुद करता है त्राण जो दृढमन सतीसमान ।
महत्व होता है उसे, और न महत्ववान ।।

975·जो महान कृतिचतुर हो, जिनको कुछ न असाध्य ।
औरों से जो साध्य नहि, वह उनको है साध्य ।।

976·"महान नर को पूज कर गह लें उसकी राय ।
नीच मनुज में नहि कभी होती ऐसी राय ।।

977·महानता गुण तुछ में, यदि पैदा हो जाय ।
तो बहु अत्याचार का, वह कारण बन जाय ।।

978·महान मानब है सदा, होते विनम्रशील ।
पर होते हैं तुछ नर, सदा विकत्थनशील ।।

979·महान नर का शील है, रहना सदाविनम्र ।
ओछे नर का शील है, रहना मद-अविनम्र ।।

980·महान नर पर-दोष हैं कभी न करते व्यक्त ।
ओछे नर पर-दोष हैं सदैव करते व्यक्त ।।

981·फरज समझ कर उचित गुण, अपनाते जो लोग ।
होंगे सद्गुण सहज ही, उनमें नित अभियोग ।।

982·सुन्दरता है शिष्ट की, अंदर का गुणरूप ।
सुन्दरता नहिं शिष्ट की, बाह्य देह का रूप ।।

983· प्रेम शरम उपकार औ, दया सत्य का शील ।
ढोकर महत्व-भार को, खंभसदृश को कील ।।

984·जीव हनन जिसमें नहीं, वही तपस कहलाय ।
और दोष ना कथन ही, गुण महान कहलाय ।।

985·कार्य सिद्धि की चतुरता, सविनय है व्योहार ।
और वही बरताव ह्रे, रिपुनाशक-हथियार ।।

986·पूर्ण गुणों को परखने, एक मात्र हथियार ।
हेय मनुज से मानना, है अपनी ही हार ।।

987·निज अपकारी को अगर, मंगल किया न जाय ।
तो महत्व गुण से नफा, क्या ही पाया जाय ।।

988·यदि समृध्द-गुणशीलता, रहती जिसके पास ।
निर्धनतामय हेयता, तो नहि उसके पास ।।

989·सद्गुण सागर-सदृश ही रहते हैं जो लोग ।
सबल काल के फेर में विचलित नहि वे लोग ।।

990·सद्गुणधारी लोग यदि सुगुण बिना रह जाय ।
तो ह्रे असहय भार से भू शोकी हो जाय ।।

सभ्यता का व्यवहार

सब का अनुसरण करके बरताव करना

991·सब से मिलकर अगर जो, सब को करें निहार ।
सुलभ सभ्य की राह का, वह तो करता पार ।।

992·प्रेमपूर्ण बरताव औ, सदकुल में अवतार ।
दोनों सज्जन-भाव के, सूचक होते सार ।।

993·मिलकर रहना देह से, सच्चा नहीं मिलाप ।
मिलकर रहना भाव से, समझा सही मिलाप ।।

994·धर्म-नीति-रत सुजन हैं, करते परोपकार ।
उनके गुण की स्तुति सदा, करता है संसार ।।

995·परदूषण भी खेल में, करना है दुख-मूल ।
परानुसारी वैर में, भी रहते अनुकूल ।।

996·सभ्यों के आधार पर, जीवित है संसार ।
बिनु उनके,वह भूमि में, घुस हो भस्माकार ।।

997·सभ्यशील बिनु जो रखें, असिसम मति की धार ।
तो भी उसको काष्ट-सम, जग समझे बेकार ।।

998·जो बिनु सनेह शत्रु से, कटु करता ब्योहार ।
दोषयुक्त ही तो उसे, कहता है संसार ।।

999·प्यार-सहित जो नहि करें, अच्छा ही ब्योहार ।
तो दिन भी उसको लगें, निशिसम तमसाकार ।।

1000· सद्गुणविहीन मनुज का, अर्जित हो जो अर्थ ।
वह धन बरतन-दोषसे, फटे दूधसम व्यर्थ ।।

निरर्थक अर्थ - प्रयोजन रहित धन:

1001·अर्जित कर धन गेह भर, जो न करें उपयोग ।
मृत-समान उस मनुज के, धन से क्या सुख-भोग ।।

1002·वित्त साध्य सब समझ जो, कृपण रहे धनयुक्त ।
ओध से तो वह बने, प्रेत जन्म से युक्त ।।

1003·अर्जित धन से जो नहीं, करता यशकर दान ।
भूमें उसका जन्म ही, माना भारसमान ।।

1004·नहि करने से दान ही, जो सब का नहि इष्ट ।
स्वयं निधन के बाद वह, क्या देखें उच्छिष्ठ ।।

1005·करता नहि खुद भोग जो, औ नहि परोपकार ।
उस करोडपति का विभव, हो जाता बेकार ।।

1006·दान किये बिनु पात्र पर, खुद जो करें न भोग ।
स्वार्जित धन के रोग से, वह करता दुख-भोंग ।।

1007·दान किये बिन रिक्त को, जो रखता बहु अर्थ ।
जरा प्राप्त रमणी यथा, उसका धन है व्यर्थ ।।

1008·सब का जो नहि इष्ट है, औ को नहि दें अर्थ ।
फल युत विषतरू नगर बिच, ज्यों उसका धन व्यर्थ ।।

1009·अशन-धर्म-रीत बिनु किये, जो रखता बहु वित्त ।
उसका धन तो अत में, बनता है पर-वित्त ।।

1010·बरसा घन फिर नीर से जैसे ही परिपूर्ण ।
त्यों अमीर की रिक्तता क्षणिक काल से पूर्ण ।।

NATARAJA IYER MEMORIAL
Curato
Kavip
1
T. N Ra

लज्जित भाव

अनुचित कार्य करने पर लज्जित होना

1011 अनुचित कृति के करण से होता लज्जा भाव ।
स्त्री की लज्जा सहज है, यों बहु लज्जा-भाव ।।

1012· खाना कपडा शेम हैं, नर के लिए समान ।
विशेष, गुण है शिष्ट में, शामिदा का ज्ञान ।।

1013· जीव सभी हैं देह का करते ज्यों अवलंब ।
त्यों महत्वगुण भी शरम का, करता है अवलंब ।।

1014· अलंकार है शिष्ट का, केवल लज्जा-भाव ।
नहि असकी गंभीर गति, वर बिन लज्जा-भाव ।।

1015· जो है लज्जित देखकर निजी पराया दोष ।
उसको ही है बोलती दुनिया लज्जा-कोष ।।

1016· अपना पालक शरम का, पालक यदि नहि संत ।
तो वे नहि हैं चाहते, जग का भोग अनंत ।।

1017· लाज निभाने के लिए सलज्ज तजते प्राण ।
जीने कभी न छोडते सलज्ज-लज्जा त्राण ।।

1018· लज्जाकारी और को जो करता है कर्म ।
वह लज्जित होता नहीं,लज्जित तो है धर्म ।।

1019· सदाचार की ही कमी, हरती है कुल-मान ।
निलज्जता हरती सभी, सुखकारी कल्याण ।।

1020· जो जीते हैं हृदय में, बिना लाज-संमान ।
वे रस्सी में लटकती पुतला हि के समान ।।

1021· "कुलगौरवकर' कृत्य से, च्युत मैं नहि की उक्ति ।
महत्व सब से सर्वदा, बढकर है यह उक्ति ।।

1022· अच्छा प्रयत्न ज्ञान विभु इन दोनों से युक्त ।
सतत सतत अभ्याससे, कुल हो गौरव युक्त ।।

1023· कुलगौरव की वृद्धि में, जो हो दृढसंकल्प ।
विधि-सहाय कटि बद्ध हो, उसमें हो न विकलप ।।

1024· कुलगौरव की वृद्धि में, जो करता आयास ।
उसका कार्य-कलाप तो, पूरा हो अविनास ।।

1025· निर्दोषी कुल-वृद्धिकर, जीवन है जो व्यक्ति ।।
जग में घेरा बंधुसे, रहता है वह व्यक्ति ।।

1026· पौरुष की पहचान तो, वही बतायी जाय ।
निजकुल गौरव-अर्थ जो, जतन किया ही जाय ।।

1027· ज्यों ढोते रण भार को, रणपटु नेता लोग ।
त्यों ढोते कुल भार को, कुल-पालन-पटु लोग ।।

1028· निजकुल गौरव के लिए, नहीं देखना काल ।
काल-ताक आलस्य से, क्षय कुल का विकराल ।।

1029· कुल-कलंकहर काम में, जो हो प्रयत्नवान ।
उसका शरीर खेद का, क्या हो जन्मस्थान ।।

1030· जिस कुल में सुत दुख सही, नहि पैदा हो जाय ।
वह कुल-तरु दुख-परशु से, निपतित ही हो जाय ।।

1031· बहु धंधों से पूर्ण जग, है ही कृषिप्रधान ।
तन-दुखकर कृषिकर्म है, फिर भी यही प्रधान ।।

1032· कृषक कर्म पर अन्यजन निर्भर रहते एव ।
जगथ की ज्यों हे धुरी, त्यों किसान वर एव ।।

1033· कृषजीवी जो लोग हैं वे रहते स्वाधीन ।
शेष और को नमन कर जीते अन्याधीन ।।

1034· धानों से संपन्न औ करूणायुक्त किसान ।
निजनृप-वश में भूप को लाते ही हैं आन ।।

1035· खेतीजीवी और से नही माँगते भीख ।
देते हैं उनको कृषक, जो लेते हैं भीख ।

1036· यदि हल धर-कर खेत में, होते चेष्टाहीन ।
तो यति जन की जिन्दगी,हो आशा से हीन ।।

1017· खेत जोतकर कर सुखा, भू का चौथा भाग ।
बीज लगा तो खाद बिन, बढे शस्यफल भाग ।।

1038· खेत जोतने से भला, खाद डालना मुख्य ।
फिर तृण निकाल पालना, जल-सिंचन से मुख्य ।।

1039· भूस्वामी यदि सतत ना, करें भूमि की देख ।
तो नापसंद दारसम, भू भी ह्वे अनदेख ।।

1040· अभाव कहकर कर्मकृषि, नहि करते जो लोग ।
लख उनकी अविवेकिता, हसता खुद भूलोक ।।

1041·अभावसम यदि शोककर, क्या है पूछा जाय ।
उसका उत्तर रिक्तता, यही बताया जाय ।।

1042·अभाव-अधकर मनुज से जो करता यदि नेह ।
नहि इह-पर के भोग-सुख, छूते उसकी देह ।।

1043·अभाव रूपी चाह से, जो भी होता ग्रस्त ।
उसके यश कुल-नाम सब, तो हो जाते अस्त ।।

1044·रहता यदपि कुलीन ही, फिर भी अनुचित बात ।
जो कर लें उस दोष का, कारण अभाव ज्ञात ।।

1045·अभाव रूपी शोक से जो पीडित दिन-रात ।
उसको अजस्र रीति से होती दुख की बात ।।

1046·शास्त्र निपुण औ तत्वविद, जो रखता नहि अर्थ ।
उसका भाषण धाक बिन, हो जाता है व्यर्थ ।

1047·धर्म-लोपकर रिक्तता, धरता है जो व्यक्ति ।
उसे पराया समझ माँ, करती व्यक्त विरक्ति ।।

1048·कल का अभाव भारसम, दर्दनाक था घोर ।
वही निक्तता आज भी दर्दनाक हो घोर ।।

1049·अग्नि-आँच में नींद ले सकना है आसान ।
पर अभाव में नींद ले सकना नहि आसान ।।

1050·भोगोचित धन हीन नर, अगर न ले संयास ।
तो होगा पर-गेह में, पीच-लवण का ह्रास ।।

भीख-मांगना

मा न खोये बिना याचना करना

1051·दानशील जो मनुज है, उससे माँगो भीख ।
अदान दानीदोष है, दोष न याचक-भीख ।।

1052·दानी से यदि सहज ही, मिलता याचित अर्थ ।
तो याचन सुखदेय है, औ न कभी-शोकार्थ ।।

1053·कपट रहित औ फर्ज से, सहित मनुज से भीख ।
याचक को भूषणकरी, इसमें नहीं अलीक ।।

1054·जो न छिपाना जानते, सपने में भी माल ।
उनसे माँगन दानसम, याचक को खुशहाल ।।

1055·गोपन बिन हैं सामने देते दानी लोग ।
इसीलिए हें याचते जग में याचक लोग ।।

1056·गोपन रूपी रोग से, नहि जो दाता ग्रस्त ।
उनको लखकर रिक्त के, सब दुख होते अस्त ।।

1057·किये बिना अपमान जोए सनेह करते दान ।
याचक उनको देखकर, पाते तृप्ति महान ।।

1058 शीतस्थूल युत जग बडा, यदि हो जाचकहीन
गुडियासम तो जग रहें, चलता रँसाधीन ।।

1059·याचक जनता भीखकर, अगर न लेती दान ।
दाताओं को तो नहीं, मिलते यश-संमान ।।

060·याचक दानी व्यक्ति से, नहीं दिखावें कोप ।
सबक सिखाता रिक्त को, अपनाही धन-लोप ।।

याचना से डरना

मानहरी याचन से डरना

1061·कपटहीन जो प्यार से, देते सम्यक दान ।
उनसे भी नहि माँगना, कोटि गुणा गुणवान ।।

1062·नर जीवित हो भीख से, विधि-विचार हो जाय ।
तो याचक सम घूमकर, वह भी मर मिट जाय ।।

1063·निर्धन दुख भीख से, दूर किया ही जाय ।
ऐसे धैर्य विचार से, और न बली उपाय ।।

1064·दुखकर दारिद-समय में, अयाचना की नीति ।
दुनिया से व्यापक बडी, रख लें महिमा रीति ।।

1065·निर्मल नीरसमान है, स्वार्जित सुपक्व पीच ।
उसका सेवन मधुरतम, बाकी रस है नीच ।।

1066·पशु को पानी चाहिए, यों याचन की नीति ।
सूचक जिहवाँ के लिए, अवगौरव की रीति ।।

1067·कपटी से नहि याचना,यदीप पडें भी माँग ।
यों याचक जन से सदा, मैं ही लूँगा माँग ।।

1068·माँगनरूपी नाव यदि, बिना त्राण रह जाय ।
तो छिपावमय भूमि से, टकराकर मिट जाय ।।

1069·याचन-दुख की याद से, चित्त पिघल हो जाय ।
छल-अदान की याद से, मन तो मर मिट जाय ।।

1070·"दान मना है" श्रवण कर, याचक तजते प्राण ।
वित्त छिपाये मनुज के, कहाँ गुप्त हो प्राण ।।

नीच जन - शुभगुण विहीन नीचों का स्वभाव

1071·नीच लोग आकार से, अन्य जनों के तुल्य ।
औ चीजों में जगत की, नहि है ऐसा तुल्य ।।

1072·निज हितविद मतिमान से, भाग्यवान हे नीच ।
भला-बुरा का फिक्र नहि, उसके दिल के बीच ।।

1073·नीच मनुज भी जगत में, रहता देवसमान ।
मनमानी आचरणमें, दोनों एक-समान ।।

1074·अपने से जो अधम हें उनको लखकर नीच ।
'हम उन से वर" बोलते सदर्प जनता-बीच ।।

1075·दण्ड भीति से नीचजन, अपनाते आचार ।
इच्छितार्थ भी वे कहीं, गहते हैं आचार ।।

1076·अपने श्रुत जो भेद हैं, उनको अपने आप ।
अन्यों से कहते अधम, समान ढोल-कलाप ।।

1077·कंठ पकड आघात किनु, "जो फैलावे बाँह ।
तो भी झाडेंगे नहीं, ओछे झूठी बाँह ।।

1078·दुख सूनते ही उच्चजन, होते और सहाय ।
पिष्ट ईखसम नीच जन बनते अन्यसहाय ।।

1079·पोषित सज्जित और को, यदि देखे जन नीच ।
तो उसका झट जलन से, दूषण करें गलीज ।।

1080·किस धंधे के योग्य नहिं, यदि संकट पड जाय ।
नीच लोग तो आप ही, क्रीतदास बन जाय ।।

प्रियाः

1081·क्या यह सुर की अंगना, या तो श्रेष्ठ मयूर ।
या कुण्डल धर मानुषी, मन शक से भरपूर ।।

1082·ऐसा लगता है मुझे, इसके नयन विलोक ।
मानो देवी सैन्ययुत, उतरी हो भूलोक ।।

1083·समझ लिया मैंने अभी, स्त्रीत्व भाव के साथ ।
धर्मराज रणरत रहें, विशाल दृग के साथ ।।

1084·स्त्रीगुणयुत इस युवति के यों दीखें दृगजाल ।
दर्शक जन के प्राण का घातक औ विकराल ।।

1085·इसकी आँखें दीखती, धर्मराज की भाँति ।
या ह्वे दृगगुणसहित हो, या हो मृग की भाँति ।।

1086·इसकी आंखें अगर ह्वे, छादित भौं से भीम ।
तो वे मुझको कंपकर, दुखद नही निस्सीम ।।

1087·इसके उन्नत षयद पर, थित दिखते परिधान ।
मत्तकरी के वदन पर, रचे हुए परिधान ।।

1088·रण थल में रिपु को भयद, मेरी कायिक शक्ति ।
इसके ललाट-नजर में, बनी पराजित शक्ति ।।

1089·मृग-नयनी इस युवति को, भूषित शरम विलोक ।
बाकी गहने वहन से, लाभ न कहता लोक ।।

1090·मधप को मधु-पान से, मिलता ही आनेद ।
दर्शित सब को प्यार तो, देता है आनंद ।।

1091·प्यारी की इक दृष्टि है, दुखद रोग का मूल ।
इसकी अपरा दृष्टि है रोगहरण का मूल ।।

1092·प्यार-विषय में नैन की, कपटमयी लघु दृष्टि ।
आधा से भी अधिक औ, दिख पडती गुरू दृष्टि ।।

1093·मुझ को लखकर प्रेमिका, सलज्ज हुई विनम्र ।
प्यार-फसल का नीरसम, थीं उसकी कृति नम्र ।।

1094·जब लखता हूँ मैं उसे, तब वह लखती भूमि ।
जबकि न लखता तब मुझे, लख हसती, नहि भूमि ।।

1095·यदीप न वह सीधी नजर, रखती मेरी ओर।
फिर भी तिरछीं नजर से, देख हसी मम ओर ।।

1096·यदीप पराया सदृश वह, बोलें कडुवी बात ।
तो भी रिपु की बात नहि, जल्दी होगी ज्ञात ।।

1097·देषहीन कटु वचन औ, रिपुसम दृष्टि-निपात ।
अन्यसदृश थित मित्र की, सांकेतिक है बात ।।

1098· मैं जब लखता हूँ उसे, तब वह हसती मंद ।
चंचल उसके हास्य में, दिखता रूप अमंद ।।

1099·परिचयविहीन मनुजसम, साधारण अवलोक ।
प्रेमी गण में सहज हो, यों कहते हैं लोग ।।

1100·अगर परस्पर पीव-दृग लखके इक हो जाय ।
फिर तो वार्तालाप से, लाभ न समझा जाय ।।

1101·श्रुति, दर्शन, रसना तथा स्पर्श-गंध सुख-भोग ।
छवियुतवलयी नारि में, मिलते, नहि औ भोग ।।

1102·दवा रोग की और है पर यह भूषित नार ।
मदन रोग का आप ही, करती है परिहार ।।

1103·निज, इच्छित स्त्री-कंध पर, तन रख शैय्या भोग ।।
श्रीधर के वैकुंठ से, बडा सुखद है भोग ।।

1104·यह स्त्री किस संसार में, पाती ऐसी आग ।
विरह-मिलन में तप्त औ शीतल हो जो आग ।।

1105· कुसुमकेश धर युवति के, कंधे इच्छित काल ।
इच्छित माल-समान हैं देते सुख तत्काल ।।

1106·इस नारी के स्कंध के, स्फर्शन से मम प्राण ।
वर्द्धित हैं इस हेतु से, अमृतज कंधविधान ।।

1107·वितरण से निज द्रव्य के, मिलता है जो सौख्य ।
नारी के आश्लेष से मिलता है वह सौख्य ।।

1108·गाढालिंगन आपसी, बिच बिन हवा-प्रवेश ।
प्रेमी जनता के लिए, सुखकर यह आश्लेष ।।

1109·प्रणयकलह, और संधिकर, तथा मिलन उपभोग ।
प्रेमी जनता के लिए, सिद हुए सुखभोग ।।

1110·ज्यों दिखती है मूढता, अधिक सोच के बाद ।
मोद सजी में त्यों बहु रंभण के बाद ।।

नायक के द्वारा नायिका की सुन्दरता का वर्णन

1111·प्रसून "अनिच्च" ओ जियें, यदपि रहें मृदुभाव ।
तो भी मेरी प्रेमिका, रखती मृदुतर भाव ।।

1112·प्यारी के दृग बहु-लखे, मम, मन, फूल समान ।
मधुर समझकर जब लखें तब नहि चेष्ठावान ।।

1113·प्यारी-कंधे वेणुसम, पल्लवसम हो रंग ।
मोतीसम रद, शूल सम, दृग खुशबू सम अंग ।।

1114·ललना के दृग देखकर, नोलोत्फले के फूल ।
सलज्ज नतसिर हो हुए, समझ न निजानुकूल ।।

1115· "अनिच्च" की ठंडलसहित ढोके स्त्री-कटि-भाग ।
बजने ना दें हितकरी वाघवृन्द के राग ।।

1116·स्त्री मुख तथैव चांद के, देखेबिना विभेद ।
तारे विमुग्धहो हुए, शक से सदा सखेद ।।

1117·क्षय-होकर फिर पूर्ण हो शोभित शशि सकलंक ।
पर नित महिला-वदन हो अतिशोभित निकलंक ।।

1118·रे शशि जिन्दाबाद हो, यदि स्त्रीवदन-समान ।
चमकदार बन जाय तो, तू प्रिय मेरा, जान ।।

1119·रे शशि चाहे अगर तू कुसुमनयन-मुख भाव ।
तो कइयों के सामने, ना हो प्रादुर्भाव ।।

1120·प्रसून "अनिच्च" हंस-पर, क्षुपसम कांटेदार ।
स्त्री-मृदु कदमों के लिए, दुखद कर्कशाकार ।।

प्यार की विशेषता बताना

निज प्यार की अधिकता बताना

1121·पय में मिश्रित शहद ज्यों, होता है सुस्वाद ।
सुभाषिनी की लार त्यों, सितरद्गत सुस्वाद ।।

1122·जैसा तन औ प्राण का, हो धनिष्ठ संबन्ध ।
वैसा मम इस नारि से, हो प्यारा संबन्ध ।।

1123·दृगपुतली निकल तू, जानें यही निदान ।
सुभालयुत मम नारि को इच्छित नहिं है स्थान ।।

1124·सुवि भूषित स्त्री-मिलन-से, मैं हूँ अमृतासन्न ।
मम प्यारी के विरह से, मैं हूँ मरणासन्न ।।

1125·रणकर छवियुत लोचनी, विस्मृति में न विलीन ।
सदैव उसके शील की, स्मृति में मैं हूँ लीन ।।

1126·प्रेमी दृग में से कभी, नहि जाते औ राह ।
पलक मारने से मृदुल, वे नहि करते आह ।।

1127·ओ प्रेमी। दृग में बसें, काजल से प्रिय-लोप ।
हो यों दृग में सोच हो, काजल लेपन-लोप ।।

1128·प्रेमी ठहरे जिगर में, ना हो लापरवाह ।
करें नही भोजन गरम, ताकि न हो प्रिय-दाह ।।

1129·प्रिय-ओझल की भीति से, खोल न करती नैन ।
पुर-जन उसको कोसते, विरक्त कह दिन रैन ।।

1130·प्रिय दिल में नित है बसा, जाने बिन यह बात ।
पुरजन निमर्म कह उसे, करते निंदित बात ।।

लज्जा का परित्याग बताना

काम भाव से लज्जा खोने की बात बताना

प्रियः

1131·भुक्त काम फिर काम से, पीडित हुए पुमान ।
ताडपत्रमयहय चढें, "मडल-रीति" बलवान ।।

1132·विरह खेद ही बिन सहे, शरीर तथा हि प्राण ।
लाज छोडकर "मडल" का पथ चढने धृतिमान ।।

1133·सद् पौरुष औ लाजगुण, मुझ को कल थे प्राप्त ।
कामी बन लेना "मडल" आज मुझे है प्राप्त ।।

1134·सद् पौरुष औ लाज की, नौका भी गतिमान ।
उसे बहाकर ले गयी, काम-बाढ बलवान ।।

1135·मालासम कंगनधरी, मेरी प्यारी शाम ।
दुख व "मडल" चढना मुझे, देती थी अविराम ।।

1136·प्यारी-वियोग यादकर, नींद न लेती नैन ।
स्मृति आती है "मडल" की, ही भी आधी रैन ।।

1137·सागरसम स्मर-रोग से, यदीप दुखी स्त्री जात ।
फिर भी सहिष्णु बिन "मडल",सचमुच विशेष जात ।

1138·संयमविहीन स्त्रीहृदय औ अति है ही दयनीय ।
यों न सोचकर बिनु छिपे, काम हुआ प्रकटीय ।।

1139·सबको विदित न आप को, यों विचार मम काम ।
नगर-गली में घूमता, मोहित हो अविराम ।।

1140·हमें जैसे दुख भोगने, नहीं मिला अवकाश ।
हमें देखकर नासमझ, जन करते हैं हास ।।

अन्यों से आरोपित प्रवाद को बताना

स्त्रियः

1141·प्रवाद से मम प्यार के होंगे स्थायी प्राण ।
मुझे विदित यह भाग्य से, पुरजन हो अनजान ।।

1142·कुसुमदृगी की श्रेष्ठता, जाने बिन पुर-लोग ।
हुए सहायक बोलकर, प्रेमी के अभि योग ।।

1143·पुरजन के अभियोग से, यदपि न अब संयोग ।
तो भी प्रवाद सुखद हो, प्राप्त सदृश संयोग ।।

1144·पुरजन के अपवाद से, होता प्यार-विकास ।
बिनु प्रवाद खोकर दशा, कृश हो प्यार-विलास ।।

1145·पी पीकर मद्यप सुरा, ज्यों हो मधु पर सक्त ।
लगा लगाकर दोष त्यों, काम सुखद हो शक्त ।।

स्त्रियाः

1146·नायक को मैंने लखा, इक ही वासर-मात्र ।
प्रवाद फैला किन्तु तो, फणिसम पर शशिगात्र ।।

1147·प्यार-फजल को है बनी, प्रवाद रूपी खाद ।
वह बढती औ नीर बन, माँ की कठोर बात ।।

1148·पुरजन के अपवाद से, प्रेम-दमन की बात ।
ज्यों घी से शांत अनल त्यों नहिं संभव-बात ।।

1149·जिसने कह दी एकदा, निर्भयता की बात ।
क्यों वह अब [illegible] से, सोचें लज्जित बात ।।

1150·निज वांछित अभियोग हैं फैलाते पुर-लोग ।
प्रेमी जन सह-[illegible] में, [illegible] सहयोग ।।

प्रिया की सखी

1151·यदि ह्वे अब अवियोग तो, मुझे बताया जाय ।
और जनों को फिर मिलन, तभी बताया जाय ।।

1152·पहले तो उनकी नजर, देती थी आनंद ।
वियोग भय से दुखद है, अब उनका संबन्ध ।।

1153·सुधी प्यार का इकसमय, हो तो घटित वियोग ।
प्रिय-वाणि अवियोग पर, आसन रखते लोग ।।

1154·प्रिय अभयद जो व्यक्ति यदि, बिछुडा फिर ह्वे जाय ।
उनके वच का प्रत्ययी, दोषी नहि बन जाय ।।

1155·प्रिय-वियोग होने कभी, अवसर दिया न जाय ।
बिछुडा प्रियजन फिर मिलें, यह दुर्लभ हो जाय ।।

1156·प्रिय यदि होकर निर्दयी, कहते विरह-विचार ।
तो निराश उनका बनें, फिर आगमन विचार ।।

1157·नेता जन के विरह की पीडा दायक बात ।
नेत्री- कृश-कर वलय से हो जाती है ज्ञात ।।

1158·बिनु इंगितविद सहचरी, जीना है दुखमूल ।
बढकर उससे प्रियविरह, माना हे दुखमूल ।।

1159·छूने से ही वायुसख, देता है संताप ।
कामरोग तो विरह में देता है बहुताप ।।

1160·प्रिय-वियोग स्वीकार कर, विरह-ताप कर नाश ।
स्त्रियाँ बहु हो विरहिनी, जीती हैं न निराश ।।

वियोगिनी नायिका का विरह-विलाप

प्रिया :

1161·छिपा रही हूँ रातदिन, मन्मथ का ज्वर-ताप ।
पर सिचन में स्रोत सम, व्यक्त हुआ ज्वर-ताप ।।

1162·मैं नहि सकती हूँ छिपा, प्रिय से, उत्थित रोग ।
प्रिय से स्मररूज-कथन में, हो लज्जा का भोग ।।

1163·मेरे तनगत जीव की, काँवर की इक ओर ।
इच्छा दुस्सह लटकती, तथा लाज औं ओर ।।

1164·काम सिन्धु गंभीर से, स्थिर हो विराजमान ।
उसी उदधि को तारने, नहि बचाव जलयान ।।

1165·दोस्ती के ही समय में, दुखकर जो बन जाय ।
रिपुता में उससे दुखद, क्या ही किया न जाय ।।

1166·मिलन समय में सिन्धुसम, लगती चाह महान ।
विरह-ताप में चाह वह, दधि से भी सुमहान ।।

1167·काम-सोत में तैरकर, नहि पाती हूँ पार ।
एकांकी मैं रात भर, जागृत हूँ अविकार ।।

1168·निद्रित करती जीवगण, सब को दयालु रात ।
निशिसहाय मै ही बनी, तज निद्रा की बात ।।

1169·विलंब समान आजकल लगता है निशि-काल ।
बिछुडे के भी सितम से निशि बनती विकराल ।।

1170·मनोवेग सम दृग अगर, दौडें प्रिय के पास ।
तो प्रवाहमय अश्रु में, सज्जन की नहि आस ।।

प्रिया :

1171·नयन दिखकर नाथ को, हुए कामरूज मूल ।
क्यों पर वे दृग विरह में, बने रुदन के मूल ।।

1172·कल दिल मे सोचे बिना, प्रिय को देखे नैन ।
निजी भूल जाने बिना, आज हुए बेचैन ।।

1173·प्रिय को उस दिन देखकर, आँखें बनी सकाम ।
अभी बहाना अश्रुजल, मजाक का यह काम ।।

1174·काजलयुत दृग चित्त में, कर पैदा स्मर-ताप ।
रो रो कर सूखे हुए, आँसू बिनु ही आप ।।

1175·सागर से विभु कामरूज, पैदा कर मम नैन ।
अनिद्र-सुख अब भोग कर, रहते हैं बेचैन ।।

1176·पैदा करके चित्त में काम-रोग मम नैन ।
बिनु निद्रा दुख में पडे, यह भी अच्छी सैन ।।

1177·प्रसन्दकर प्रिय को लखे, मेरे लोचन आज ।
बिलख बिलख कर अश्रुबिन, सूखे रहें विराज ।।

1178·मन से नहि, वाक से, दर्शाया ही नेह ।
प्रिय को दृग देखे बिना, आतुर निस्संदेह ।।

1179·प्रिय के सुयोग विरह में नींद न लेते नैन ।
इसी तरह का शोक दुख पाते हैं दिन-रैन ।।

1180·मेरे सम दृष्टिधर का, घोषित पटह-समान ।
भेद जानना नगर की जनता को आसान ।।

विरहिनी के मन में पीलापन से उत्थित शोक

प्रिया :

1181·मैंने प्रिय के विरह को मान लिया उस काल ।
अब मैं किससे क्या कहूँ पीलापन का हाल ।।

1182·प्रिय ने मुझ को दे दिया सगर्व पीला रंग ।
फैल रहा है वह अभी, मेरे सारे अंग ।।

1183·प्रियने मुझ से हडप ली, तुन्दरता औ लाज ।
बदले में दी पीलिया, औ मन्मथरूज आज ।।

1184·प्रिय के वच मैं सोचती, करती प्रिय-गुण गान ।
फिर भी आयी पीलिया, विदिद न छल या आन ।।

1185·मेरा प्रिय तजकर मुझे, जाता उधर विलोक ।
तन पर फैली पीलिया, इधर सतत अवलोक ।।

1186·दीपशमन की तम यथा, लखता है राह ।
विवर्णता विश्लेष पर, रखती तथा निगाह ।।

1187·प्रिय के आश्लेष से, विरत रही जिस काल ।
पीलापन ममदेह भर, फैल गया उस काल ।।

1188·पीलापन इसको मिला यों सब कहते दोष ।
"इसको प्रियने क्यों तजा" कौन बोलता दोष ।।

1189·विरहमूल नायक अगर, सकुशल ही रह जाय ।
तो मेरा सारा बदन, पीला ही हो जाय ।।

1190·विरही निदर्य यार का दूषण किया न जाय ।
तो मैं पीली से नाम मम, प्रचलित ही हो जाय ।।

प्रिया :

1191·इच्छित पति को प्राप्तकर, लब्धकाम स्त्री-लोग ।
बीज हीन फल हर्ष का, करते हैं उपभोग ।।

1192·जीवराशियों के लिए, ज्यों हो वृष्टि सहाय ।
त्यों प्यारी पर नाथ का, प्यार दिखाया जाय ।।

1193·पतिसनेहयुत विरहिनी, सहती है सुवियोग ।
पुनर्मिलन के गर्व से, यह भी है शुभ-योग ।।

1194·जो नारी पति-नेह का, यदि न पात्र बन जाय ।
तो वह नारी पातकी, जग में समझी जाय ।।

1195·वांछित प्रियने दार पर, यदि न दिखाया नेह ।
तो प्रिय से क्या हो भला, चाहें दार सनेह ।।

1196·एक पक्ष का प्रेम ही, दुखदायक ठहराय ।
तुला भारसम आपसी, प्रेम सुखद ठहराय ।।

1197·एक तरफ में ही खडे, मन्मथ रणनिष्णात।
ना जानें मेरी व्यथा, तथा रोग की बात ।।

1198·पति के मीठे वचन सुख, अलब्ध नारिसमान ।
धैर्यवान संसार में, नहि है कोइ आन ।।

1199·मेरा प्रियतम यदि नही, दयासहित रह जाय ।
सुनना उसके शील तो, श्रुति-सुखकर हो जाय ।।

1200·रे मन । निदर्य यार से क्यों कहता निज क्लेश ।
त्यों कहना बेकार हो ज्यों शोषित रतनेश ।।

अ

अनुभूत सुख यादकर रोना
प्रेमी के विरह सोचकर दुखी होना

प्रिया:

1201·स्मृति करने से प्रेम की, होता अनंत हर्ष ।
सुरा-पान से प्रेम का, है सुखकर उत्कर्ष ।।

1202·वांछित स्त्री के स्मरण से, कोई नहि है क्लेश ।
कितनी भी हो प्रीति विभु, वह सुखकर अक्लेश ।।

1203·मुँह से निर्गत छीक ज्यों विघ्नसदृश रुक जाय ।
त्यों प्रिय से मम याद का कपट किया ही जाय ।।

1204·प्रिय के दिल में मैं प्रिया, करती हूँ चिर वास ।
मेरे दिल में प्रिय सदा, करता है स्थिर वास ।।

1205·प्रिय निज दिल में नहि मुझे, देता रहते स्थान ।
पर मम दिल में शरम बिनु, वह क्यों गहता स्थान ।।

1206·प्रिययुतदिन का स्मरण कर, जीना है आसान ।
मेरा जीना अन्यथा, कभी नहीं आसान ।।

1207·प्रिययुतसुख भूली नहीं, विरहताप से तप्त ।
मैं प्रिय की विस्मृति करूँ, तो जीवन संतप्त ।।

1208·चाहे जितना यार का, स्मरण किया ही जाय ।
रिस ना प्रिय को स्मरण से, उसका यही सहाय ।।

1209·प्रिय बोला मुझसे कभी, "हम दोनों नहि भिन्न" ।
पर अब उसकी विरति को, प्राण जानकर खिन्न ।।

210·मत छिप जा तू सोम हे, जीवित रह चिरकाल ।
बिछुडे प्रिय को देखने, लोलुप मम दृग-जाल ।।

प्रिया :

1211·निद्रा लेते समय मैं, प्रियतम का सीदेश।
वाह्क समने की मदद, क्यों न करूँ सविशेष ।।

1212·मेरी विनती से अगर, झषसमदृग हो सुप्त ।
तो प्रिय से जीवितदशा, बोलूँगी, अतिगुप्त ।।

1213·जो प्रिय मुझ पर जाग में, नहीं दिखाता नेह ।
लखकर उसको स्वप्न में, मैं जिन्दा दृढ-देह ।।

1214·प्रियने मेरी जाग में, नहीं दिखाता प्यार ।
उस पर सुखकर स्वप्न में होता मेरा प्यार ।।

1215·प्रिय को लखकर जो मिला, जागृति में सुखभोग ।
सपने में भी आज के, मिलें वही सुख भोग ।।

1216·जग में यदि जागृति-दशा, सदैव अक्षिमान ।
स्वप्नदृष्ट तो प्रिय नहीं, मुझ से विमुक्तिमान ।।

1217·प्रिय मम निष्ठुर जाग में, कभी न करता प्यार ।
निद्रा में आकर मुझे, देता शोक अपार ।।

1218·मेरा प्रियं पोते समय, कंधों पर आरूढ ।
तथैव जागृति-समय में, मानस पर आरूढ ।।

1219·जागृति तथैव स्वप्न में प्रिय यदि है नहि दृष्ट ।
तो नारी से जगत में निंदित हो प्रिय धृष्ट ।।

1220·प्रियतम मुझ को तज चला, यों कहते पुर-लोग ।
पर न जानते स्वप्न में, प्रिय से मम संयोग ।।

प्रियाः

1221·साँझ न तू रे शाम है, जोबिछुडे परिणीत ।
तू है उनके प्राणहर, ऐसा मुझे प्रतीत ।।

1222·भ्रामक संध्या-काल रे, तू क्यों दुख से दीन ।
प्रियसम मम तव नाथ भी, बनता दयाविहीन ।।

1223·कंपित सी छवि-हीन सम, संप्रति संध्याकाल ।
मुझे सताता घृणित कर, बिखरा कर दुखजाल ।।

1224·प्रिय जब हाजिर है नहीं, तब यह संध्याकाल ।।
वधथल में मारकसदृश, मम घातक विकराल ।।

1225·किया गया है सुबह को, मुझ से क्या उपकार ।
रचा गया हे शाम को, मुझ से क्या अपकार ।।

1226·प्रिय के सुयोग-काल में, सुखद रही जो शाम ।
विदित न पहले विरह में, दुखकर हो वह शाम ।।

1227·प्रात-मध्य औ शाम को, कामरोग का फूल ।
कली-पक्व-विकसित-दशा, पाता क्रमानुकूल ।।

1228·गोप-वेणु अब शाम का, शुचि-सम देता ताप ।
और शाम का दूत बन, बनता मारक चाप ।।

1229·चित्त-भ्रमकर शाम को, मेरे सम पुर-लोग ।
विरह-ताप से तप्त हो, पाते हैं दुख-शोक ।।

1230·मेरे अक्षय प्राण अब, विदेश गत धन-हेतु।
प्रिय की कृति लख शाम ही, बनें मरण के हेतु ।।

अंगों का लावण्य कम होना

प्रिया :

1231 · विरह-ताप देकर गया, मेरा नाथ सुदूर ।
उससे दृग अब फूल लख, लज्जा से भरपूर ।।

1232 · विवर्ण आंखें अश्रु से, सूचित करती आज ।
हमसे इच्छित नाथ का, निर्दय निष्ठुरकाज ।।

1233 · प्रिय के सुयोग समय में, कंधे हुए विशाल ।
सूचित करते वे अभी, कृश हो वियोग-काल ।।

1234 · नायक के विश्लेष में, कंधे थे छविहीन ।
हेमवलय गिरने लगे, कृश कर-सम हो क्षीण ।।

1235 · च्युतकंगन के साथ ही, कंधे थे गत रूप ।
ईंगित करते वे अभी, प्रिय के कठोर-रूप ।।

1236 · च्युतकंगन की बाहें तथा, कंधे तथा न पीन ।
प्रिय को जन कटु बोलते, इससे मैं दुख-दीन ।।

1237 · निर्दय प्रिय से चित्त रे, कह भुज का कृश हाल ।
इससे जो भी श्रेय हो, सो पा तभी खुशहाल

1238 · प्रिय का कर आश्लेष भी, जब थे शिथिलित हाथ ।
वलयधरी का तब बना, पीला तुरन्त माथ।।

1239 · आलिंगन के बीच में, बही हवा जब शीत ।
तब तो पीली हो गयी, स्त्री की आँखें शीत ।।

1240 · नारी-रूप-ललाट में, विवर्णता का भेद ।
लखकर दृग को भी मिला, पीलापन का खेद ।।

1241·दुखद-मदन के रोग का, यदि है क्या उपचार ।
रे मन, मुझ से वह दवा, कह कर सोच-विचार ।।

1242·प्रिय मुझ पर आसक्त नहि, तो भी चिर रह चित्त ।
विषण्ण होना मौढय है प्रिय के विरह निमित्त ।।

1243·रे मन, मुझ में वासकर, क्यों प्रिय मैं अनुताप ।
मुझ पर दुखकर नाथ, को, होता क्या उनुताप ।।

1244·रे दिल, प्रिय को देखने, लोलुप हैं ये नैन ।
ले जा इनको साथ ही, ना तो मैं बेचैन ।।

1245·रे मन इच्छत नाथ यदि, नहीं दिखाता प्यार ।
तो क्या तजना साध्य है, प्रिय से मेरा प्यार ।।

1246·रे दिल प्रिय यदि दृष्ट हो, तो न दिखाता रोष ।
अनुपस्थिति में नाथ की, क्यों करता छल-रोष ।।

1247·शुभ दिल रे, तज कामना, अथवा तज लें लाज ।
दोनों सहने के लिए, मुझ में नहीं इलाज ।।

1248·मम मन रे आकर यहाँ, प्रिय न दिखाता प्यार ।
पर तू चल उसके यहाँ-यह अज्ञान अपार ।।

1249·तेरा प्रिय तुझ में बसें, तो क्यों उसकी खोज ।
कर लें जाकर हृदय में, रे दिल सदैव सोच ।।

1250·प्रिय मुझ को तज कर चला, फिर भी उसकी याद ।
करके मन में विचलित, दुबला बना मम गात ।

संकेत प्रकट करना:

प्रिय- स्वगत

1271·यद्यपि तुमने विरह-दुख, नहीं किया है व्यक्त ।
पर कर तर कर, नयन तव, मतलब करते व्यक्त ।।

1272·रूपलोचनी वंशसम, केथवती नादान ।
नारी में स्त्रीसुलभ है, ज्यादा ही अज्ञान ।।

1273·मणिमाला के बीच में, सुबद सूत्रसमान ।
प्रिया-कांति के बीच में, दिखती है पहचान ।।

1274·दल-विकसित के पूर्व है यथा कली में बास ।
प्रिया-हास्य के बीच भी, इंगित का आभास ।।

1275·बहुकंगन धर प्रेयसी, निकली कर संकेत ।
है उस छल-संकेत में औषध सुखद समेत ।।

प्रिया (स्वगत) :

1276· पहले प्रेमाधिक्य से, मेल हुआ जी बाद ।
विरह-जनित-रीत तजन का, सूचक वह ही ज्ञात ।।

1277· "प्रिय तन से संबन्द भी, मन से चला सुदूर" ।
पूर्व जानकर यह वलय, कर से गिरते दूर ।।

1278·मुझे छोडकर नाथ मम, चला गया दिन-पूर्व ।
पर तन पर वैवर्ण्य तो, पडा सात-दिन-पूर्व ।।

1279·लखे प्रिया ने पूर्वजो, वलय कंध औ पाद ।
वह भावी विश्लेष का, सूचक होगा ज्ञात ।।

1280·स्मररूज को प्रकटकर, दृग से कर संकेत ।
अपना अविरह माँगना, स्त्रीत्व शील समवेत ।।

मिलन की प्रबल इच्छा

प्रिया:

1281·स्मृति से मिलता मोद औ, दर्शन से संतोष ।
कामी को, ना मधुप को, स्मरण-दर्श से तोष ।।

1282·तालवृक्ष सम प्रेम यदि, अति वर्धित हो जाय ।
तो प्रेमी से तिल-मात्र भी रिस न दिखाया जाय ।।

1283·पति चाहे इनकार कर, कर लें स्वेच्छाचार ।
तो भी मेरे दृग उसे, लखने नित तैयार ।।

1284·रे सखि मैं करने कलह, चली नाथ के पास ।
कलहभूल, पर मन चला, रख पति-रति की आस ।।

1285·ज्यों दृग कलम न देखते, अंजन लेपन-काल ।
त्यों पति-दोष न देखती, उसके दर्शन-काल ।।

1286·प्रिय जब पडते नजर मैं, तब न देखती दोष ।
प्रिय जब नहि पहते नजर, तब लखती ही दोष ।।

1287·ज्यो प्रवाह में कूदना, विदित हुए भी वेग ।
प्रिय से करना मान भी, त्यों होगा अविवेक ।।

1288·दुखद समझ भी मधुप का, ज्यों भाता मधु-पान ।
प्रिय तेरे उर पर रे छली, त्यों मैं मुग्ध महान ।।

प्रिय :

1289·मृदुतर श्वेता फूल से, है रति का उपभोग ।
जानबूझकर तत्व यह, फल पाते कुछ लोग ।।

1290·मेरी प्यारी नैन से, करती थी संकेत ।
फिर मुझ से भी दौडकर गले लगी सवलेद ।।

प्रियाः

1291·मुझे भूलकर नाथ-मन, ठहरा नाथ-सहाय ।
यह लखकर भी चित्त तू, मेरा क्यों न सहाय ।।

1292·पति को निर्दय समझ भी, "वे नहि करें अमर्ष ।
यों विचार कर चित्त क्यों पति-घर चला सहर्ष ।।

1293·मुझे छोडकर चित्त तू जाता प्रिय के पास ।
"आतुर को नहि मित्र हो" शायद तेरी आस ।।

1294·प्रणयकलह बिनु चित्त तू चहता प्रिय का भोग ।
इस में तुझ को कौन दें सलाह का सहयोग ।।

1295·देख न प्रिय को भीति हो, फिर प्रिय वियोग-खेद ।
यों विचार कर चित्त है, पाता सदैव खेद ।।

1296·सोचूँ प्रिय की क्रूरता, यदि मम मन एकान्त ।
तो मेरे भक्षक सदृश, दिख पडता दुःखान्त ।।

1297·मन जो प्रिय को भूलने, सदैव अशक्तिमान ।
उस विमूढ मन से सहित, भूली लाज महान ।।

1298·"निंदित करना नाथ को, खुद का है अपमान ।
यों विचार कर चित्त, है करता प्रिय-गुणगान ।।

1299·यदि दुख हरने के लिए, खुद मन नहीं सहाय ।
तो इस विभु संसार में, बनता कौन सहाय ।।

1300·स्वीय चित्त यदि बंधु का, करता नहीं बचाव ।
तो स्वाभाविक और में, बंधु बचाव-अभाव ।।

सखी:-

1301·देखें थोडी देर तक, प्रिय के दुख का ताप ।
तदर्थ बिन आश्लेष तू, रिसयुत रह चुपचाप ।।

1302·अमित नमकयुत भोजसम, अमित विरह ह्वे व्यर्थ ।
भोजसदृश मित लवणयुत, मित वियोग ना व्यर्थ ।।

प्रिया:-(दिल में)

1303·वियुक्त स्त्री का शोक-हर, जो न करें उर-योग ।
शोकी को फिर दुख्दसम, उसको समझें लोक ।।

1304·रूठे स्त्री को शांत कर, सुयोग किया न जाय ।
म्लान लता-जड-छेदसम, जग में वह बन जाय ।।

प्रिय:-(दिल में)

1305·कुसुमदृगी स्त्री-चित्त में थित बहु वियोग-बात ।
शुभगुणधारी पुरुष को शोभाकर हो ज्ञात ।।

1306·विरह-रन्ठ बिन प्रेमरस, तथा नहीं सुस्वाद ।
अपक्व औ अतिपक्व फल, यथा न ही सुस्वाद ।।

1307·"सुरत-हर्ष चिर या नहीं" यों यदि सोचा जाय ।
तो सुखमूलकविरह में, भी इक दुख ठहराय ।।

प्रिय:- (प्रकट)

1308·"प्रिय मदर्थ होगा व्यथित", यों चिन्तित भी खेद ।
प्रिया न करें तो ना नफा कहने से निज खेद ।।

1309·ज्यों शीतल तरु-छाँहमें, मिलता जल सुस्वाद ।
प्रेमी जन का विरह भी, त्यों होता सुस्वाद ।।

प्रिया :

1310·यदपि विरह में नाथ ने, मुझ को तजा सखेद ।
फिर भी उसका मिलन ही चहता मेरा चेत ।।

प्रिया:

1311·दृगसे तव उर-सौख्य हैं पाती समस्त नार ।
इसीलिए उर-सौख्य तव, ना पाऊँगी, जार ।।
1312·मौनी थी, मैं रूठकर, प्रियने देकर छींक ।
मुझ से चिरायु माँगने, यों सोचा हो ठीक ।।

प्रिय:

1313·"दीर्शिद करने और को रचित मण्डनाकार" ।
यों कह भूषित नाथ से कुपित रही थी दार ।।
1314·"हम सब से प्रिय दम्पती" सुन यह मेरी बात
"किससे बढकर प्रिय बता" वह बोली रिस-साथ ।।

1315·मैं बोला न हम कभी, बिछुडेंगे आजन्म "।
स्त्री सुन यह रोने लगी विचार भावी जन्म ।।
1316·"सूमिरण तव करता रही" सुन यह मेरी बात ।
स्त्री बोली तजकर मुझे, "क्यों भूले थे बाद "।।

1317·मैंने क्षति की, प्रेयसी बोली "जिन्दाबाद "।
फिर रो बोली-"छींक की, क्यों किस की कर याद ।।

1318·छींक रोकने मैं लगा वियोग से हो भीत ।
स्त्री रो बोली" रोक मत तुझ पर किसका प्रीत ।।

1319·आश्वासन की युक्ति से मेरी प्यारी तुष्ट ।
"औ स्त्री को भी युक्ति यह" बोली होकर रुष्ट ।।

1320·जब मैं लखता दार का अंग-रूप-संस्थान ।
तब सह सकोप बोलती" तुलना का क्या स्थान ।।

मान में हर्ष

प्रियाः

1321·प्रिय की यद्यपि भूल नहि तो भी उन पर मान ।
आपस कें आति नेह का प्रेरक है तू जान ।।

1322·लघु दुख उत्थित रूठ से, प्रिय रति-छेदन-मूल ।
यदपि रहें तो भी वही, होगा महत्व-मूल ।।

1323·भू में जल संमिलितसम, प्यारे पति से मान ।
सुखद रहें इससे कभी, है क्या त्रिदिव महान ।।

1324·प्रिय से परिरंभणकर, योग मूल है मान ।
उस में मम मन छेद कर, सैन्य उदित बलवान ।।

प्रियः-

1325·अदोष बिछुडे नाथ को, कोमल स्त्री का कंध ।
छूने को यदपि न मिलें, तो भी है आनंद ।।

1326·जीर्ण अन्न है अशन से ज्यों देता आनंद ।
मान मिलन से त्यों अधिक देता है आनंद ।।

1327·जो हारा है मान में, वह पाता है जीत ।
मिलन हर्ष में तत्व यह, होगा ही निर्णीत ।।

1328·खेदविराजित भालयुत, मिलन मूल जो सौख्य ।
क्या मुझ को फिर मान से, हो यह सौख्य ।।

1329·लालसुशोभित प्रेमिका, कर लें अजस प्रान ।
याचन करता मै रहू विस्तृतनिशिन्जान ।।

1330·प्रणयकलह रतिभोग में सुखकर माना जाय ।
मिलन सौख्य से मान हीसुखकर समझा जाय ।।

RAJA IYER MEMORIAL L
Curators
Kaviyar